जून–2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष – 87 । अंक – 6 । प्रति – ₹ 25 । ₹–300 वार्षिक





गायत्री मंत्र के 24 अक्षर

"गायत्री मंत्र के 24 अक्षरों के साथ अनेक कारण जुड़े हुए हैं। इसके साथ कई चौबीस रहस्यों का सम्मिलन है।

1. संसार की समस्त विद्याओं के भंडार 24 महाग्रंथ हैं। 4 वेद, 4 उपवेद, 4 ब्राह्मण, 6 दर्शन और 6 वेदांग इस प्रकार चौबीस हुए। तत्त्वज्ञों का ऐसा भी मत है कि गायत्री के एक–एक अक्षर से यह एक–एक ग्रंथ बना है। गायत्री के गर्भ में इन 24 ग्रंथों का मर्म छिपा हुआ है। गायत्री का मर्म इन 24 ग्रंथों में वर्णित है, जो गायत्री का विस्तृत रहस्य जानना चाहें, वे इन 24 महाग्रंथों को पढ़कर उसका मर्म समझ सकते हैं।
2. हृदय जीवन का और ब्रह्मरंध्र ईश्वर का स्थान है। हृदय से ब्रह्मरंध्र 24 अंगुल दूर है। एक–एक अक्षर से एक–एक अंगुल की दूरी को तय करके जीव गायत्री द्वारा ब्रह्म में लीन हो सकता है, ऐसा योगी लोग कहते हैं। गायत्री के 24 अक्षर यह संकेत करते हैं कि ईश्वर जीव से, हृदय मस्तिष्क से 24 अंगुल दूर है। हृदय में ईश्वर रहता है और मस्तिष्क में मन। अपने मन को ईश्वर के अर्पण कर दो तो कल्याण की प्राप्ति हो जाएगी।
3. गायत्री के तीन विराम होते हैं, शरीर के भी तीन भाग हैं। प्रत्येक भाग के अंतर्गत आठ अंग होते हैं, इस प्रकार शरीररूपी गायत्री के 24 अक्षर हो जाते हैं। (अ) शिर, नेत्र, कर्ण, प्राण = 8 अक्षर (ब) मुख, हाथ, पैर, नाक = 8 अक्षर (स) कंठ, त्वचा, गुदा, शिश्न = 8 अक्षर। यह सब मिलकर 24 हुए। गायत्री 1 के दो–दो अक्षर से इन बारह प्रमुख अंगों की रचना हुई है। ये स्वभावतः पवित्र हैं, इन्हें सदा पवित्र ही रखने का प्रयत्न करना चाहिए।
4. शरीर की सुषुम्ना नाड़ी में 24 कशेरुकाएँ हैं (ग्रीवा में 7, पीठ में 12, कमर में 5 = 24)। ये कशेरुकाएँ प्राणों का, मातृकाओं का, ग्रंथियों का और चक्रों का पोषण करने वाली हैं। यह पोषण गायत्री कहा जाता है और इन 24 कशेरुकाओं को 24 अक्षर कहते हैं।
5. शरीर में प्राणसूत्र 24 हैं, गायत्री में 24 अक्षर हैं। गायत्री का एक–एक अक्षर सूक्ष्मशरीर के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि स्थूलशरीर के लिए ये 24 प्राणसूत्र हैं।
6. शरीर में 5 ज्ञानेंद्रियाँ, 5 कर्मेंद्रियाँ, 5 प्राण, 5 तत्त्व और 4 अंतःकरण हैं। इन 24 के द्वारा ही शरीर जीवित रहता है। हमारे आध्यात्मिक शरीर में गायत्री की 24 शक्तियाँ इसी प्रकार ओत–प्रोत हैं।
7. गायत्री–साधना से अष्ट सिद्धि, नव निद्धि और सात शुभ गतियों की प्राप्ति होती है, ये 24 महीन लाभ गायत्री के अंतर्गत हैं।
8. इस मंत्र में 24 ऋषियों और 24 देवताओं की शक्तियों की शक्तियाँ सन्निहित हैं।
9. सांख्य दर्शन में वर्णित 24 तत्त्वों से सृष्टि का क्रम चलता है। उन 24 का प्रतिनिधित्व गायत्री के 24 अक्षर करते हैं।
10. शरीर में प्रधानतः 24 अंग हैं। उसके प्रत्येक तृतीयांश में भी 24–24 टुकड़े हैं। शरीर के तीन भाग हैं। शिर, धड़ और पैर। इन तीनों भागों में से प्रत्येक में 24–24 अवयव हैं। इसी प्रकार सूक्ष्मशरीर में 24 तत्त्व हैं। इन दोनों शरीर के अवयवों की सृष्टि 24 अक्षरवाली गायत्री से होती है। ब्रह्मपुरुष के शरीर के 24 भाग गायत्री के 24 अक्षर हैं।

इस प्रकार के और भी अनेकों कारण हैं, जो गायत्री के 24 अक्षरों का हेतु हैं। प्रत्येक अक्षर के पीछे बड़े–बड़े महान तत्त्व हैं, जिनका विस्तृत वर्णन अन्यत्र करेंगे।"

— श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

अखण्ड ज्योति

प्रखर प्रज्ञा   सजल श्रद्धा

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	87
अंक	:	06
जून	:	2023
ज्येष्ठ-आषाढ़	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.05.2023
वार्षिक चंदा		
भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

बहुमूल्य जीवन

यह मनुष्य का जीवन ईश्वरप्रदत्त बहुमूल्य उपहारों में से एक है। गीता में जब भगवान कृष्ण अपना विराट रूप अर्जुन को दिखाते हैं तो गीताकार के मुख से निकलता है—'**दिवि सूर्यसहस्रस्य**' अर्थात इतना प्रकाश भगवान के भीतर था, जितना सहस्रों सूर्यों के एक साथ उदय होने पर निकलता है। हमारे जीवन के प्रत्येक प्रभात की किरण हमें यही स्मरण दिलाती हुई आती है कि उस अपरिमित एवं अनंत प्रकाश के एक अंश के रूप में हम धरती पर आए हैं।

आवश्यकता उसके मूल्य को समझने की है, जो हमें परमात्मा ने दिया है। दुर्भाग्य यह है कि जो दिया गया है, उसका मूल्य इनसान समझ नहीं पाता और इस जीवन को कूड़े-करकट की तरह से फेंककर लौट जाता है। हाथ में मात्र निराशा ही लगती है। ईश्वर ने मनुष्य को अतुलनीय संपदाओं से भरा-पूरा जीवन दिया है और वह सफल तभी हो पाता है, जब वह संपदाओं का सदुपयोग करना जानता है। जीवन के संकटग्रस्त क्षणों में भी हमें सदा यह स्मरण रखना चाहिए कि यह जीवन बहुमूल्य है और इसके प्रत्येक क्षण का सदुपयोग ही हमारे जीवन को एक नूतन धारा प्रदान करता है। ❑

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

भगवान जगन्नाथ रथयात्रा में

जून-जुलाई, 2023 के पर्व-त्योहार

रविवार	04 जून	कबीर जयंती	सोमवार	03 जुलाई	गुरु पूर्णिमा
बुधवार	14 जून	योगिनी एकादशी	गुरुवार	13 जुलाई	कामिका एकादशी
मंगलवार	20 जून	रथयात्रा	सोमवार	17 जुलाई	सोमवती अमावस्या
बुधवार	21 जून	अंतरराष्ट्रीय योग दिवस	गुरुवार	20 जुलाई	मुहर्रम
शनिवार	24 जून	सूर्य षष्ठी	सोमवार	24 जुलाई	सूर्य षष्ठी
गुरुवार	29 जून	देवशयनी एकादशी	शनिवार	29 जुलाई	कमला एकादशी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

देश के माथे पर कलंक है बालश्रम



बालश्रम का प्रचलन आधुनिक मानव समाज व सभ्यता के ऊपर एक ऐसा कलंक है, जिसे आज तक दूर नहीं किया जा सका है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा जो आँकड़े समय-समय पर जारी किए जाते हैं; उनसे स्पष्ट होता है कि बालश्रमिकों की संख्या सारी दुनिया में निरंतर बढ़ रही है। इस समय करोड़ों बालश्रमिक सारी दुनिया में कार्यरत हैं। अपने परिवार के साथ पारिवारिक व्यवसाय या खेती में काम करने वाले श्रमिकों की अथवा अंशकालिक बालश्रमिकों की पूरी संख्या का अनुमान लगाया जाना संभव नहीं है।

बालश्रमिक विश्व के सभी देशों में मौजूद हैं, जिनमें अत्यंत गरीब से लेकर सबसे संपन्न देश अमेरिका जैसे देश तक शामिल हैं। अमेरिका की सरकार ने यह घोषणा की थी कि भारत तथा अन्य एशियाई देशों से वह उन उद्योगों से निर्मित सामान आयात नहीं करेगी, जिनमें बालश्रमिक कार्यरत हैं; जबकि वस्तुस्थिति यह है कि अकेले न्यूयॉर्क में लाखों बच्चे वस्त्र उद्योग में कार्यरत हैं।

दुनिया के अन्य विकसित देशों; जैसे रूस, फ्रांस, इंग्लैंड, स्पेन में भी यही स्थिति है। भारत जो सबसे बड़ा विकासशील देश है—में भी करोड़ों बालश्रमिक विभिन्न उद्योगों में लगे हुए हैं और उनकी संख्या निरंतर बढ़ती ही जा रही है। इसके उन्मूलन के लिए बाकायदा कानून है तथापि विभिन्न श्रम एवं समाजसेवी संगठन व संस्थाएँ तब भी बालश्रम के उन्मूलन के लिए कार्यरत दिखते हैं।

भारत में अधिकांश बालश्रमिक असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं, जहाँ मजदूरी अत्यंत कम है। यहाँ तक कि केवल दो जून की रूखी-सूखी रोटी पर भी बालश्रमिक उपलब्ध हैं। बालश्रमिक सभी तरह के उद्योगों में कार्यरत हैं; जिनमें अत्यंत खतरनाक प्रकृति के उद्योग; जैसे कालीन बुनाई, माचिस तथा पटाखे, काँच, बीड़ी उद्योग एंव निर्माण उद्योग सम्मिलित हैं।

दुर्भाग्यवश बाल वेश्यावृत्ति ने भी दुनिया में और विशेष रूप से थाईलैंड, बर्मा, नेपाल जैसे देशों में एक बड़े उद्योग का रूप धारण कर लिया है, जिसमें लाखों बालक-बालिकाएँ कार्यरत हैं। यद्यपि सारे विश्व में यह आम सहमति है कि ऐसा नहीं होना चाहिए तथा विभिन्न देशों की सरकारों ने बालश्रम के अभिशाप को समाप्त करने के उद्देश्य से अनेक कानून भी बनाए हैं तथापि दुनिया में बालश्रमिकों की संख्या निरंतर बढ़ती ही जा रही है।

इससे यह स्पष्ट है कि यह समस्या इतना विकराल रूप धारण कर चुकी है; जिसका इलाज महज कानून बनाकर नहीं किया जा सकता। यह एक सर्वमान्य निष्कर्ष है कि बाल मजदूरी गरीबी की वजह से पैदा होती है और गरीबी समाप्त करके ही इस अभिशाप को समाप्त किया जा सकता है। जनसंख्या में निरंतर वृद्धि, महँगाई में निरंतर वृद्धि तथा बड़ी संख्या में ग्रामीण क्षेत्रों से गरीब तथा छोटे किसान परिवारों का शहरों की ओर पलायन—बालश्रमिकों की बढ़ती हुई संख्या के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार है।

संगठित क्षेत्र में मिलबंदी तथा आधुनिकीकरण के कारण बड़ी संख्या में कारखानों के बंद होने से बढ़ती हुई बेरोजगारी के कारण ऐसे बेरोजगार मजदूरों

के परिवारों के बच्चों को बालश्रमिक के रूप में कार्य करने के लिए विवश होना पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी खेती लाभप्रद न रहने तथा वहाँ रोजगार के अन्य वैकल्पिक स्रोत न होने के कारण शहरों की ओर पलायन करने वाले परिवारों के बच्चे शहर में परिवार का भरण-पोषण करने के लिए श्रम करने पर मजबूर हैं।

जनसंख्या में हो रही सतत वृद्धि व विशेष रूप से निम्न एवं निम्न मध्यमवर्गीय परिवारों में सदस्यों की अधिक संख्या के कारण इन परिवारों के बच्चे भी बालश्रमिक के रूप में कार्य करने को मजबूर हैं; क्योंकि उनके परिवारों के मुखिया की सीमित आय, परिवार का भरण-पोषण करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

यह भी गौरतलब है कि श्रमिकों की आय में गत वर्षों में हुई वृद्धि, महँगाई में हुई वृद्धि की तुलना में काफी कम है; जिसके कारण संगठित क्षेत्र तथा असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की क्रय शक्ति का काफी ह्रास हुआ है और एक व्यक्ति की आय से परिवार का गुजारा संभव नहीं रह गया है।

बहुत से उद्योगों में श्रमकानूनों से बचने के लिए उद्योगपतियों द्वारा ज्यादा-से-ज्यादा काम ठेकेदारों के माध्यम से कराने की परंपरा भी बालश्रमिकों की निरंतर बढ़ती संख्या का एक प्रमुख कारण है। ऐसे ठेकेदार कम-से-कम पारिश्रमिक पर आधे-से-अधिक कार्य करवाकर अपनी आय बढ़ाने की नीयत से बालश्रमिकों को नियोजित करते हैं, जो कि उन्हें अत्यंत सस्ते पारिश्रमिक पर उपलब्ध हो जाते हैं।

साथ ही ऐसे बालश्रमिकों के लिए श्रमकानूनों को लागू करने की बाध्यता भी नियोक्ता पर नहीं रहती और इन बालश्रमिकों द्वारा अपना संगठन बनाकर शोषण का प्रतिवाद करने की संभावना भी नहीं रहती। बीड़ी उद्योग एवं कालीन उद्योग में मुख्य रूप से बालश्रमिकों की अधिक संख्या होने का यह एक मुख्य कारण है।

बालश्रम समाज के ऊपर एक कलंक है तथा देश एवं समाज के विकास पर इसका दूरगामी दुष्प्रभाव पड़ता है, आधुनिक समाज में इसका कोई स्थान नहीं होना चाहिए, परंतु चिंता की बात यह है कि बालश्रमिक प्रथा का उन्मूलन तो दूर की बात है, बालश्रमिकों को एक सम्मानजनक मानवीय जीवन, उचित पारिश्रमिक तथा विभिन्न श्रमकानूनों का संरक्षण भी समुचित रूप से प्राप्त नहीं हो पा रहा है।

बालश्रमिकों को अत्यंत ही अमानवीय परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। इन बालश्रमिकों के लिए विभिन्न श्रमकानूनों; जैसे न्यूनतम वेतन अधिनियम, वेतन भुगतान अधिनियम, दुकान एवं संस्थान अधिनियम, कारखाना अधिनियम आदि का कोई अर्थ एवं उपयोगिता नहीं है।

इन बालश्रमिकों का न तो कोई त्योहार होता है न कोई अवकाश। यहाँ तक की बीमारी की दशा में भी काम करते रहना इनके लिए बाध्यता समान है। शिक्षा प्राप्त करना अथवा खेल-कूद में भाग लेना बालश्रमिकों के लिए महज एक स्वप्न है। यह शोचनीय स्थिति है; जबकि हमारे संविधान ने प्रारंभ से ही इस गंभीर विषय पर चिंतन कर बालकों के भविष्य के प्रति अनेक उपाय तथा व्यवस्थाएँ संविधान में सम्मिलित की हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 में 14 वर्ष से कम उम्र के बालकों के कारखानों तथा उद्योगों में कार्य करने पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया गया है। अनुच्छेद 39 में वर्णित नीतिनिर्देशक तत्त्वों में राज्य को यह निर्देशित किया गया है कि वे ऐसी नीति बनाएँ, जिससे बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो सके और आर्थिक आवश्यकता से

विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े, जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो।

उक्त नीतिनिर्देशक सिद्धांत को पर्याप्त व प्रभावशाली न पाते हुए 42वें संविधान संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 39 (च) जोड़कर राज्य को यह निर्देशित किया गया है कि वे बालकों को स्वतंत्र एवं गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर व सुविधाएँ प्रदान करने की व्यवस्था करें और बालकों एवं अल्पवय व्यक्तियों की शोषण तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा करें।

सन् 1986 में बालश्रमिक व्यवस्था पर रोक लगाने के उद्देश्य से बालश्रम (निषेध एवं विनमतिकरण) अधिनियम पारित किया गया, लेकिन संविधान में निहित भावना तथा संबंधित कानून का विभिन्न सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिस्थितियों के चलते न तो सम्मान किया गया और न ही पालन तथा कुछ ऊपरी व दिखावटी कार्यों के अलावा बालश्रम उन्मूलन के लिए सरकारों द्वारा कोई ठोस कदम नहीं उठाए गए।

बालश्रमिकों का शोषण निरंतर जारी रहा और उसमें वृद्धि ही होती रही, जिसके कारण अंततः न्यायपालिका को पुनः हस्तक्षेप करना पड़ा। शिवकाशी में पटाखा व दीयासलाई उद्योग में कार्यरत बालश्रमिकों की दुर्दशा के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में दायर जनहित याचिका (एम. सी. मेहता विरुद्ध तमिलनाडु राज्य 1996) (6) एस.सी.सी. पृष्ठ-756) पर निर्णय देते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार को यह निर्देशित किया कि वे खतरनाक उद्योगों में बालश्रम के पूर्ण उन्मूलन के लिए शीघ्र व प्रभावी कदम उठाएँ।

अपने उक्त ऐतिहासिक निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बालश्रम उन्मूलन से बेरोजगार होने वाले बालश्रमिकों के कल्याण तथा पुनर्वास के लिए एक कोष बनाने तथा प्रति बालश्रमिक 20,000 रुपये की दर से उनके नियोक्ता से वसूल कर उक्त कोष में जमा करने का निर्देश दिया। गैर खतरनाक उद्योगों में कार्यरत बालश्रमिकों की दशा सुधारने व उनके कल्याण के उद्देश्य से यह भी निर्देशित किया गया है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि बालश्रमिकों से 6 घंटे से अधिक काम न लिया जाए तथा प्रतिदिन नियोजक के व्यय पर दो घंटे शिक्षा की अनिवार्य व्यवस्था की जाए।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक अन्य ऐतिहासिक निर्णय—बँधुआ मुक्ति मोर्चा विरुद्ध यूनियन ऑफ इंडिया (ए. एस. आर. 1977 सुप्रीम कोर्ट 2218) में केंद्रीय सरकार को यह निर्देशित किया कि वे राज्य सरकारों के साथ मिलकर ऐसी नीति निर्धारित करें, जिससे सभी उद्योगों में बालश्रम का पूरी तरह उन्मूलन सुनिश्चित किया जा सके साथ ही सभी बालश्रमिकों के लिए उनकी शिक्षा की सुनिश्चित व्यवस्था नियोजकों के व्यय पर करने, बालश्रमिकों के नियमित स्वास्थ्य परीक्षण कराए जाने एवं उन्हें पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने की भी व्यवस्था हो सके।

सर्वोच्च न्यायालय ने यह सुनिश्चित करने के लिए कि उसके द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन हो रहा है यह निर्देशित भी किया कि सरकार द्वारा जो कार्रवाइयाँ की जाएँ—उनकी सूचना समय-समय पर सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत की जाए।

सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर गंभीर चिंता एवं दुःख व्यक्त किया है कि गरीबी के कारण बालकों को बँधुआ मजदूर तथा बालश्रमिक के रूप में अमानवीय जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है जो कि संविधान के विभिन्न प्रावधानों की भावना के खिलाफ है तथा इस संबंध में बनाए गए कानून मात्र किताबों की शोभा बनकर रह गए हैं।

बालश्रमिक प्रथा का एक महत्त्वपूर्ण, लेकिन दुःखद सामाजिक पहलू यह है कि अधिकांश बालश्रमिक पहले से ही गरीबी की मार झेल रहे दलित आदिवासी तथा अल्पसंख्यक वर्ग से आते हैं।

वहाँ रिक्शा चलाना, कुलीगीरी तथा होटलों में आदिवासी बालश्रमिकों की बहुतायत है तो साथ ही मेकेनिकल तथा इंजीनियरिंग उद्योग, रिपेयरिंग शॉप तथा बुनाई-रँगाई आदि उद्योगों में बालश्रमिकों की संख्या ज्यादा है।

पहले से ही आर्थिक रूप से विपन्न इन वर्गों के बालकों को यदि कलम की जगह कम उम्र में ही औजार पकड़ना पड़ेगा तो निश्चित ही शिक्षा के अभाव में वे बेहतर रोजगार से सदा के लिए वंचित हो जाएँगे और ऐसी स्थिति में सभी वर्गों में समानता का उद्देश्य व सपना कभी साकार नहीं हो सकेगा।

बाल वेश्यावृत्ति के मामले में भी यह उल्लेखनीय तथ्य है कि अधिकांश बालवेश्याएँ अनुसूचित जाति से आती हैं। बालश्रमिक प्रथा के कारण आर्थिक एवं सामाजिक असमानता की खाई निरंतर बढ़ती ही जाएगी। हमारे संविधान की उद्देशिका में हमारे देश को संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य के रूप में विकसित करने की शपथ ली गई है।

यदि उक्त उद्देश्य को पूरा करना है तो यह आवश्यक है कि बालश्रम प्रथा का शीघ्र व पूर्ण उन्मूलन किया जाए। यह कार्य केवल कानून बनाने से नहीं, बल्कि केंद्र तथा राज्य की सरकारों, समाजसेवी संगठनों, श्रम संगठनों तथा जागरूक नागरिकों के मिले-जुले प्रयास एंव दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ चलाए जाने वाले अभियान से ही संभव होगा।

विगत कुछ वर्षों से बालश्रमिक प्रथा के उन्मूलन के प्रति जो जागरूकता पैदा हुई है तथा न्यायपालिका द्वारा जो निर्देश दिए गए हैं, उनसे कुछ आशा की जा सकती है। इसके लिए हमें दृढ़ संकल्पित होना पड़ेगा। बच्चे सुकुमार पुष्प के समान होते हैं, उनके विकास पर हम सबको उचित ध्यान देना चाहिए। ❑

टाल्या के आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कुछ लोगों ने उसे रंगमंच पर अभिनय के लिए खड़ा कर दिया, पर उससे एक शब्द न बोलते बना। दोबारा सिफारिश पाकर वह पुनः रंगमंच पर पहुँचा, पर इस बार भी उसका वही हश्र हुआ। लोगों ने अपमानित करना प्रारंभ कर दिया। टाल्या ने फिर भी हिम्मत न हारी और वह छोटे-छोटे पात्रों के अभिनय करते-करते प्रसिद्ध अभिनेता बन गया। तब उससे पूछा— "आपकी सफलता का रहस्य क्या है?" टाल्या ने उत्तर दिया— "जितनी बार गिरो, उतनी बार उठो।" सत्य यही है कि गिरकर के उठने वाले ही जीवन में सफल होते हैं।



जीवन-मृत्यु का शाश्वत सत्य



मृत्यु जीवन का शाश्वत सत्य है और साथ ही जीवन का सबसे बड़ा भय भी, जिसको यथार्थ में स्वीकार करना सहज नहीं होता। तात्त्विक रूप में यह वस्त्र बदलने जैसी प्रक्रिया है, जिसमें जीवात्मा जीवन की काल अवधि पूर्ण होने पर चाहते, न चाहते हुए देहरूपी चोले को उतारकर अपनी अगली यात्रा पर निकल पड़ती है। यह अस्तित्व की महायात्रा का शाश्वत सत्य है, ईश्वर की परिवर्तनशील सृष्टि का अटल विधान है।

जन्म और मृत्यु के बीच के काल को जीवन यात्रा के मार्ग में विश्रामगृह के रूप में समझा जा सकता है, जिसमें यात्री रात भर ठहरता है, विश्राम करता है तथा फिर अगले पड़ाव की पारलौकिक यात्रा पर निकल पड़ता है। समझदार यात्री यहाँ के विश्रामकाल में सराय व इसमें रुके बाशिंदों व वस्तुओं से अनावश्यक मोह-ममता नहीं पालते तथा ऐसा कोई कार्य नहीं करते कि विश्रामगृह में ही उलझकर रह जाएँ। यात्री को यह एहसास रहता है कि यह उसका अस्थायी निवास है व अपने निवास का उद्देश्य पूरा होने पर अगली मंजिल की ओर बढ़ चलना है।

यही इस जीवनरूपी यात्रा का भी सच है, जिसमें समझदार यात्री यहाँ की जीवनरूपी सराय में अनावश्यक मोह-ममता को नहीं पालते, राग-द्वेष आदि में नहीं उलझते, बल्कि जीवन में आए रिश्तों-नातों व संबंधों को कर्त्तव्य भाव के साथ पूरा करते हुए, पीछे एक प्रेरक विरासत को छोड़ते हुए अगली यात्रा पर निकल पड़ते हैं।

इस तरह एक विवेकशील व्यक्ति जीवनरूपी नाटक में एक कुशल अभिनेता के रूप में अपनी भूमिका निभाता है, जीवन के मर्म को समझते हुए मृत्यु के स्वागत की तैयारी करता है। अपनी कार्यप्रणाली ऐसी रखता है कि यदि जीवन का किसी भी पल अवसान हो जाए व मृत्युदूत दस्तक दे जाएँ तो बिना अधिक भय-पश्चात्ताप के अगली महायात्रा पर बढ़ सकें।

इस तरह एक समझदार व्यक्ति इस शाश्वत सत्य को समझते हुए धरती को एक अस्थायी निवास मानता है, जहाँ जीवात्मा अपने कर्मों का परिष्कार करने के लिए आई है। यहाँ मृत्युलोक में कुछ भी स्थायी नहीं, जिससे मोह-ममता व राग-संबंध जोड़ा जाए और यदि वह ऐसी भूल करता है तो इसकी कीमत मर्मांतक बिछोह-वेदना व असह्य शोक-पीड़ा के रूप में भुगतना उसकी नियति बन जाती है।

यह भी एक शाश्वत सत्य है कि जीवात्मा का वास्तविक घर तो सूक्ष्मजगत् है, जहाँ वह अपने शुभ-अशुभ कर्मों के अनुरूप विभिन्न लोकों में वास करती है। कुछ काल बाद वह पुनः अपने कर्मों के हिसाब से धरती पर, मृत्युलोक में जन्म लेती है और यह आवागमन की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि जीवात्मा सकल बंधनों से मुक्त नहीं हो जाती। फिर जीवात्मा का धरती पर जन्म-मरण का बंधन समाप्त हो जाता है और ईश्वर की इच्छा या आदेश पर ही वह धरती पर विशिष्ट ईश्वरीय प्रयोजन हेतु मानव शरीर धारण करती है।

इस तरह इस सृष्टि के चक्र, ईश्वरीय विधान के अंतर्गत संचालित जीवन-मृत्यु, लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक, कर्मफल सिद्धांत आदि की स्वचालित

प्रक्रिया के अंतर्गत चलता रहा है, जिसको समझते हुए विवेकशील व्यक्ति संसार में विचरण करते हुए भी अपने वास्तविक घर आध्यात्मिक लोक को नहीं भूलता, जहाँ अपने शुभ कर्मों के फलस्वरूप मृत्योपरांत उसे जाना है।

उसके लिए यह संसाररूपी अस्थायी निवास एक सराय या धर्मशाला से अधिक कुछ भी नहीं, जहाँ वह आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करता है और आत्मपरिष्कार करते हुए अपने आध्यात्मिक विकास को सुनिश्चित करता है। इसमें मृत्यु, अस्तित्व की महायात्रा का एक परिवर्तन-पड़ाव भर है, जिसके उपरांत जीवन की अगली कक्षा में उसे प्रवेश करना है।

समझदार व्यक्ति जीवन के इस परिवर्तन को जानते हुए आवश्यक तैयारी के साथ मृत्यु का सामना करते हैं और अस्तित्व के व्यापक सत्य को समझते हुए जीवनलक्ष्य के प्रति एकनिष्ठ रहते हैं। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जीवन की यह गहरी समझ व अंतर्दृष्टि स्वाध्याय के साथ किए गए आत्मचिंतन तथा महापुरुषों के सत्संग के संग स्पष्ट होती है व धीरे-धीरे प्रगाढ़ रूप लेती है।

इसी के साथ समझ आता है कि जीवन के दो ही मार्ग हैं—प्रेय और श्रेय। प्रेय इंद्रिय व मन को प्रिय लगने वाला मार्ग है, जो भौतिक या सांसारिक इच्छा-आकांक्षाओं के अनुरूप होता है अर्थात जो यह मानकर चलता है कि यही संसार स्थायी घर है, इसी के लिए जीना-मरना है, इस संसार से अधिक व आगे कुछ भी नहीं।

इसके विपरीत श्रेय मार्ग अर्थात कल्याणकारी मार्ग, जो इस संसार की नश्वरता का बोध रखते हुए आत्मा को प्रधानता देता है, वो अपने वास्तविक आध्यात्मिक घर के बारे में सचेत रहता है। तदनुरूप वह अपने शरीर, इंद्रियों व मन के क्रियाकलापों का निर्धारण करता है। स्वामी विवेकानंद ने इसी मार्ग को '**आत्मना मोक्षार्थ, जगत् हिताय च**' के रूप में जीवनलक्ष्य की संज्ञा दी है।

परमपूज्य गुरुदेव ने इसी के आधार पर '**मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण**' की बात कही है। महर्षि अरविंद इसी को धरती पर दिव्य जीवन का आधार मानते थे। यही श्रीमद्भगवद्गीता का योगपथ है और यही शास्त्रों में वर्णित कल्याण मार्ग है।

इसके लिए आवश्यक हो जाता है कि इस नश्वर जीवन को शाश्वत एवं स्थायी मूल्यों के आधार पर पुनर्परिभाषित एवं निर्धारित किया जाए। इस सुरदुर्लभ जीवन के महत्त्व को समझते हुए हर दिन, हर पल इसका सदुपयोग किया जाए।

इस दुष्कर मानव योनि में हमारा जन्म सांसारिक भोगों में नष्ट-भ्रष्ट होने के लिए नहीं, अपितु साधनामय ईश्वरपरायण जीवन जीते हुए अंतर्निहित दैवी संभावनाओं के जागरण व विकास हेतु हुआ है। आत्मसाक्षात्कार हमारा जन्मसिद्ध अधिकार व लक्ष्य है। इसके साथ अपने कर्त्तव्य कर्म को पूरा करते हुए, धरती पर ईश्वरीय प्रयोजन को पूरा किया जाना है।

परमपूज्य गुरुदेव ने इस निमित्त व्यावहारिक अध्यात्म का समग्र प्रारूप खड़ा किया है। इसमें प्रातः आत्मबोध से लेकर रात को सोते समय तत्त्वबोध और दिन भर अपने कर्त्तव्य कर्मों के सम्यक निर्वाह के साथ उपासना, साधना व आराधना की त्रिवेणी में पुण्य स्नान किया जाता है।

इसमें हमें 'प्रत्येक दिन नया जन्म और प्रत्येक रात नई मौत' का अभ्यास करते हुए जीवन का श्रेष्ठतम सदुपयोग करना है, जिससे यदि किसी पल जीवन के अंतिम सत्य मृत्यु से साक्षात्कार हो जाए तो पूरी तैयारी के साथ इसका सामना किया जा सके। इस मार्ग का अनुपालन करने वाले जीवन-मृत्यु के इस शाश्वत सत्य से परिचित रहते हैं और तदनुरूप जीवन-व्यवस्था चलाते हैं। ❑

पर्व विशेष - गायत्री जयंती

पूज्य गुरुदेव की तपस्या का उद्देश्य



परमपूज्य गुरुदेव उस दिन हिमालय की यात्रा से लौटकर के ही आए थे। मुखमंडल पर प्रकाशमय वलय सुशोभित हो रहा था। एक वर्ष के सघन तप का तेज और उससे जन्म लेती ऊर्जा की तरंगों को उनके सान्निध्य में सहज ही अनुभव किया जा सकता था। वैसे ही लोगों के हृदय में पूज्य गुरुदेव से मिलने की आतुरता बहुत तीव्र रहती थी—उस दिन तो उस आकुलता में और भी ज्यादा वृद्धि हो रही थी। उनके तप से अभिपूरित व्यक्तित्व की ओर लोग चुंबक की तरह खिंचे चले जा रहे थे।

पूज्य गुरुदेव शांतिकुंज के द्वितीय तल पर स्थित अपने कक्ष से एक मंजिल नीचे उतरकर वहाँ एकत्रित हो चुकी परिजनों की पंक्तियों को दर्शन देने आए। उन्हें प्रणाम कर लेने के उपरांत सभी वहीं पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के निकट बैठ गए।

उनकी हिमालय की अज्ञातवास की यात्रा के विषय में जानने की उत्कंठा वहाँ उपस्थित प्रत्येक स्वजन के मन में थी। कुछ ही समय में वहाँ बैठे एक कार्यकर्त्ता के मुख से यह भाव प्रकट भी हो गया और उन्होंने पूज्य गुरुदेव से पूछा—"गुरुदेव! हिमालय की यात्रा में कौन-सी आध्यात्मिक सिद्धियाँ प्राप्त हुईं?"

उनके इस प्रश्न पर गुरुदेव तनिक हँसे एवं फिर बोले—"बेटा! हिमालय की यात्रा का उद्देश्य आध्यात्मिक सिद्धियों की प्राप्ति नहीं, वरन महती उद्देश्य के लिए तप-संपदा का संचय करना होता है। जिन्हें तुम सिद्धियाँ कहकर पुकारते हो, वो तुम्हें यहीं बैठे प्राप्त होती हैं—उनकी प्राप्ति के लिए हिमालय की चढ़ाई आवश्यक नहीं। चढ़ना हो तो आदर्शों के हिमालय पर चढ़ो, जिस पर हम जीवन भर चढ़े हैं। अध्यात्म के पथ का वही एकमात्र राजमार्ग है।"

थोड़ा रुककर वे बोले—"बेटा! समस्त आध्यात्मिक संपदाओं का आधार एक ही है और वह है—गुरु के प्रति श्रद्धा, आदर्शों के प्रति समर्पण। गुरु के प्रति समर्पण ही वह गौरीशंकर शिखर है, जिस पर स्थित होकर कोई भी चेतना के नीलाभ आकाश से एक हो सकता है। जो यह करना जानता है, उसके लिए आध्यात्मिक जीवन के सभी रहस्य सहज ही उद्घाटित हो जाते हैं।"

वहाँ बैठे सभी लोग पूज्य गुरुदेव द्वारा कही गई सारगर्भित बात के मर्म को समझने की कोशिश करने लगे। सभी ने अपने अंतर्मन को टटोला और महसूस किया कि यह सत्य है कि यह चाहत तो हरेक के मन में भरी पड़ी है कि हमारे पास भी गुरुदेव जैसी सिद्धियाँ व विभूतियाँ आ जाएँ; जबकि उनकी तुलना में हमारी आदर्शनिष्ठा तो शून्य ही है।

हर कार्यकर्त्ता ने अनुभव किया कि सिद्धियों का आधार तो वस्तुतः समर्पण ही है। जिसका समर्पण जितना समग्र होगा, वह गुरुदेव की चेतना को उतना ही व्यापक रूप से धारण कर सकेगा। उसका जीवन उतनी ही तीव्रता के साथ परिवर्तित होने लगेगा।

पूज्य गुरुदेव ने आगे कहना आरंभ किया और बोले—"बेटा! ज्यादातर लोग आध्यात्मिक इसलिए होना चाहते हैं, ताकि बिना कुछ किए दिव्य विभूतियों के हकदार बन जाएँ। आध्यात्मिक पथ का अनुगामी बनने के लिए परिवर्तन वेश का नहीं, जीवन का आवश्यक होता है।"

सभी सुनने वालों के अंतरंग में वे शब्द गहरे उतर गए। पूज्य गुरुदेव के वैसा कहने का उद्देश्य किसी को निराश करना नहीं था, बल्कि भ्रम-जंजालों, मूढ़मान्यताओं की जड़ पर कुठाराघात करना था। महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति की हवस इनसान के मन में गहरी भरी पड़ी है। पल-पल पर वह इन्हीं की पूर्ति के लिए जूझता-खपता रहा है, परंतु साधना का मार्ग अधोगामी वृत्तियों के परिपालन का नहीं, बल्कि चेतना के आरोहण का है। इस पथ पर जीवन को खपा देने वाले ही सौभाग्य के अधिकारी बन पाते हैं।

पूज्य गुरुदेव ने अपनी बात को आगे बढ़ाना आरंभ किया और बोले—"बेटा! हमारी तपस्या का उद्देश्य संसार के हर देश में, जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भगीरथों का निर्माण करना है।" थोड़ा रुककर वे बोले—"अध्यात्म की सच्ची शक्ति को धारण करने के लिए परशुराम, भगीरथ जैसी आत्माओं की जरूरत पड़ती है। कुंडलिनी जागरण जैसे उद्देश्य छोटे होते हैं। अध्यात्म की शक्ति को धारण करने के लिए भगवान शिव की तरह जटाएँ चाहिएँ और उस स्तर की पात्रता को विकसित करने के लिए प्रचंड तप की जरूरत पड़ती है।"

पूज्य गुरुदेव के शब्द सुनने वालों की चेतना के तारों को झंकृत करते जा रहे थे। वे समझ रहे थे कि साधनात्मक पुरुषार्थ का वास्तविक उद्देश्य क्या है? वस्तुतः पूज्य गुरुदेव की तपस्या का वास्तविक उद्देश्य वैश्विक मानवता की रक्षा के लिए एक प्रचंड तापसिक पुरुषार्थ को संपन्न करना था।

उन्होंने अन्य जगहों पर अपनी चर्चा में कहा भी था—"मेरी साधना का उद्देश्य मोक्ष या निर्वाण की प्राप्ति नहीं है, बल्कि पीड़ित मानवता की रक्षा करना है, जीवन एवं अस्तित्व के परिवर्तन को संभव कर दिखाना है।"

उस दिन के उस अंतरंग वार्त्तालाप के क्रम में गुरुदेव अपनी साधनात्मक गतिविधियों के मूल उद्देश्य की ओर इशारा कुछ इन्हीं भावों के साथ कर भी रहे थे।

अपनी बातों को समेटते हुए पूज्य गुरुदेव बोले—"बेटा! आने वाले वर्षों में तुम हमारी तपस्या से जन्म लेने वाले परिणामों को वैश्विक पटल पर घटने वाले घटनाक्रमों के रूप में अनुभव कर सकोगे। नवनिर्माण के उदीयमान नेतृत्व के लिए हम परदे के पीछे से आवश्यक शक्ति और परिस्थितियाँ उत्पन्न करेंगे। हम जिस अग्नि में अगले दिनों तपेंगे, उसकी गरमी असंख्य जाग्रत आत्माएँ अनुभव करेंगी।" इतना कहकर पूज्य गुरुदेव ने अपनी वाणी को विराम दिया और अपने कक्ष को ले जाने वाली सीढ़ियों की ओर चल दिए।

सुनने वालों की चेतना में उनके कहे गए शब्द अभी भी प्रतिध्वनित हो रहे थे। वे महसूस कर पा रहे थे कि वे लोग सौभाग्यशाली हैं, जो इस युग के महातपस्वी के सान्निध्य को अनुभव कर पा रहे हैं। उठने वाले कार्यकर्त्ताओं में से एक के मन में महाकवि कालिदास के रघुवंश 1/14-15 में लिखे ये शब्द गुंजायमान होने लगे—

सर्वातिरिक्तसारेण सर्वतेजोऽभिभाविना।
स्थितः सर्वोन्नतेनोर्वीं क्रान्त्वा मेरुरिवात्मना॥
आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृश आगमः।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भ सदृशोदयः॥

अर्थात वे दृढ़ता में सबसे दृढ़; तेजस्वियों में सबसे तेजस्वी; उच्चता में सबसे उच्च; व्यापकता में सबसे व्यापक मेरुसदृश आत्मा वाले थे। जैसा उच्च उनका व्यक्तित्व था, वैसी ही उनकी प्रज्ञा थी; जैसी प्रज्ञा थी, वैसी ही उनकी साधना थी और उसी के सदृश उनके जीवन की उपलब्धियाँ थीं। ❑

जब आत्मा हर कर्त्तव्य का तुरंत पालन करना चाहे तो उसे ईश्वर की उपस्थिति का भान होता है।

बढ़ चलें आध्यात्मिक जीवन की ओर



पंडित रामदयाल अपनी पत्नी कल्याणी के साथ हरिपुर गाँव में रहते थे। वे गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए आध्यात्मिक जीवनचर्या का पालन किया करते थे। वे प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्त में उठकर नित्य स्नान करते, तत्पश्चात भगवान श्रीहरि का ध्यान करते, गायत्री जप के साथ-साथ नित्य यज्ञ किया करते थे।

उनका इकलौता पुत्र रमण अपने पिता के साथ बैठकर यज्ञ किया करता। अपने पिता के ललाट पर चंदन लगा हुआ देखकर वह स्वयं भी चंदन लगाने की जिद किया करता। माता कल्याणी प्रातः गीता पाठ करती, तब रमण भी अपनी माता के पास बैठकर गीता सुना करता। माता नित्य सुबह भोजन तैयार करने के बाद बिना नमक वाले भोज्य पदार्थ को गुड़ के साथ मिलाकर मंत्रोच्चार के साथ अग्निदेव को समर्पित करती एवं फिर उसे रमण व रमण के पिताजी के लिए परोसती।

शाम में जब श्रीहरिविष्णु की आरती होती तो सभी एकत्र होते और प्रसाद पाते। रात में सोते समय माता कल्याणी और पिता रामदयाल अपने पुत्र को नित्य रामायण, महाभारत, उपनिषद्, पुराण आदि सद्ग्रंथों से रोचक व प्रेरक कहानियाँ सुनाया करते। इस प्रकार रमण का लालन-पालन बड़े ही आध्यात्मिक वातावरण में हुआ।

फलस्वरूप रमण में बाल्यकाल से ही सात्त्विक व आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ पनपने लगीं। बड़े होने पर वह भी नित्य संध्यावंदन, गायत्री मंत्रजप, अग्निहोत्र, श्रीहरिविष्णु का ध्यान करने लगा। स्नातक तक की शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद माता-पिता ने एक सुसंस्कारी कन्या के साथ उसका विवाह संपन्न कराया। घर के आध्यात्मिक वातावरण में रमण की पत्नी भी आध्यात्मिक जीवन जीने के प्रति जागरूक हुई और सास-ससुर तथा पति की तरह ही आध्यात्मिक जीवन जीने लगी।

सुबह-शाम यज्ञ में, आरती में, स्वाध्याय में सभी लोग सम्मिलित होते। समय-समय पर पारिवारिक गोष्ठियाँ होतीं और गृहस्थ जीवन की विविध समस्याओं का आध्यात्मिक समाधान ढूँढ़ा जाता। घर पर आने वाले संतों, आगंतुकों की खूब आवभगत होती। स्वस्थ व आध्यात्मिक जीवनशैली के कारण परिवार के सभी सदस्य सदा स्वस्थ, सुखी व प्रफुल्लित रहते।

पूरे गाँव के लिए यह परिवार एक आदर्श परिवार बनकर उभरा। गाँव के अन्य लोग भी उसी प्रकार की आध्यात्मिक जीवनशैली अपनाने को प्रेरित हुए और देखते-ही-देखते गाँव का हर परिवार पंडित रामदयाल व कल्याणी की तरह ही आध्यात्मिक जीवन जीते हुए, सात्त्विक आहार-विहार के साथ स्वस्थ, सुखी व प्रफुल्लित रहने लगा।

वहाँ लोग साफ-स्वच्छ जीवन जीने लगे। मांस-मदिरा व नशा आदि से दूर रहने लगे। सादा जीवन-उच्च विचार के सिद्धांत को पूरे गाँव के लोगों ने अपने जीवन का सिद्धांत बना लिया। लोग गाँव की गलियों की नित्य सफाई करने लगे। गाँव के आस-पास पौधारोपण कर पर्यावरण का भी संरक्षण करने लगे।

सभी लोग देशी गायों के दुग्ध का महत्त्व समझते हुए गौ पालने लगे और रासायनिक खेती की जगह प्राकृतिक व जैविक खेती कर अधिक-

से-अधिक अन्न उत्पादन कर सुखी व समृद्ध बनते गए।

गाँव के लोग पर्व-त्योहार को मिल-जुलकर मनाने लगे और सहकारपूर्वक रहने लगे। देखते-ही-देखते पूरा गाँव एक आदर्श गाँव के रूप में तब्दील हो गया। फिर तो आस-पास के गाँव भी हरिपुर गाँव की तरह ही आदर्श गाँव के रूप में बदल गए। इस प्रकार अन्य गाँवों में लोग पहले से अधिक सुखी, समुन्नत, आनंदित व प्रफुल्लित जीवनयापन करने लगे।

वास्तव में एक आदर्श व आध्यात्मिक व्यक्ति ने एक आदर्श परिवार को जन्म दिया। फिर एक परिवार ने दूसरे परिवार को तदनुरूप आदर्श व आध्यात्मिक जीवन जीने को प्रेरित किया। फिर सभी परिवारों ने मिलकर पूरे गाँव को एक आदर्श गाँव के रूप में बदल दिया। फिर उस एक आदर्श गाँव ने ही अन्यान्य कई गाँवों को आदर्श गाँव के रूप में तब्दील होने को प्रेरित किया। इस प्रकार दीप-से-दीप जल उठे और चहुँओर सुख, शांति, समृद्धि व आनंद का वातावरण विनिर्मित होता गया।

दरअसल आध्यात्मिक जीवनशैली ही आदर्श व्यक्ति, परिवार, गाँव, समाज व राष्ट्र की आधारभूमि हो सकती है और हमें सुख, शांति, समृद्धि व खुशहाली दे सकती है। अतः बढ़ चलें आध्यात्मिक जीवन की ओर। ❑

शिष्य ने गुरु से पूछा—''गुरुदेव! संसार में सबसे बड़ी विडंबना क्या है ?'' गुरु बोले—''वत्स! संसार में सबसे बड़ी विडंबना शरीर के नश्वर होते हुए भी उसकी आवश्यकताओं को आत्मा की अजर-अमरता से ऊपर का स्थान देना है। आत्मा परमात्मा का अंश है। जिन भोगों में शरीर को आनंद मिलता है, उनसे ही आत्मा को भी आनंद मिले, यह संभव नहीं। मनुष्य यह जानते हुए भी आत्मा को दीन-हीन अवस्था में रखता है और मुरदों जैसा जीवन जीने को मजबूर होता है, इससे बड़ी विडंबना और क्या हो सकती है ?''

शिष्य ने आगे पूछा—''गुरुदेव! इस विडंबना से मुक्ति का उपाय क्या है ?'' गुरुदेव ने उत्तर दिया—''वत्स! विवेक और वैराग्य ही वे साधन हैं, जिनसे मनुष्य परमात्मा के बनाए मार्ग पर चलने में सफल होता है। वैराग्य मनुष्य को भोगों से मुक्त करता है तो विवेक मनुष्य को बोध प्रदान करता है।'' शिष्य की जिज्ञासा का समाधान हो गया।

संताप से मुक्ति



संतान वियोग से दुःखी, संतप्त दंपती अब एकांत चाह रहे थे। मृत्यु के बाद के पारिवारिक-सामाजिक शिष्टाचार, कर्मकांड के बीच शोक का आंशिक निवारण हो चुका था, लेकिन एकांत के पलों में संतान की याद व उससे जुड़े प्रसंगों के सुमिरन के साथ वियोग-वेदना की पीड़ा रह-रहकर हृदय को कचोट रही थी। कई प्रश्न ऐसे थे, जिनके समाधान शेष थे, जिन्हें वे वीतराग सद्गुरु के सान्निध्य में पाना चाहते थे, जो अभी यहाँ से दूर प्रकृति की गोद में, हिमशिखरों में विराजमान थे।

वे एक सुबह निकल पड़े, नगर-गाँव को पार करते हुए और वनप्रदेश में प्रवेश कर गए। इस बार उनकी भावदशा कुछ बदली-सी थी, मृत्यु को इतना नजदीक से देखकर, जीवन के नश्वर स्वरूप का बोध पर्याप्त रूप से जीवंत हो चुका था। समझ आ गया था कि यह संसार तो एक सराय मात्र है, असली घर तो प्रभु का अक्षरधाम है और फिर मृत्यु एक शाश्वत घटना है, जो सबकी निर्धारित है। इसलिए इस सोच के साथ वे निर्भय, निर्द्वंद्व बीहड़ जंगल को पार कर रहे थे।

हिंसक जीवों के किन्हीं अप्रत्याशित साक्षात्कार के लिए भी वे पर्याप्त रूप से तैयार थे, लेकिन ऐसा कोई अवसर नहीं आया। रास्ते भर घने जंगल में नीरव शांति पसरी थी। इस नीरवता को चीरती जंगली जीव-जंतुओं की कुछ ध्वनियाँ ही बीच-बीच में सुनाई देती थीं। घनी छाया के बीच, शीतल हवा के झोंकों के साथ सफर कब मंजिल तक पहुँचा, पता ही नहीं चला। दोपहर तक वे वीतराग सद्गुरु की कुटिया में पहुँच चुके थे, जो शिखर के समीप एक ऐसे स्थल पर थी, जहाँ से नीचे घाटी व जंगल का दृश्य साफ था। सुदूर बड़े-बड़े खेत-खलियान, भवन व बस्तियाँ आदि सब यहाँ से बहुत नन्हे प्रतीत हो रहे थे। प्रकृति और अस्तित्व का विराट विस्तार व आभामंडल प्रत्यक्ष था।

यहीं रात्रि विश्राम के बाद उन्हें प्रातः सद्गुरु महाप्राज्ञ के दर्शन हुए। यथा नाम तथा गुण। दीप्त चेहरा, अर्द्धोन्मीलित आँखें, धूनी रमाकर आसन पर बैठे आप्तकाम महायोगी। ऐसे ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु को साष्टांग प्रणाम कर वे सर झुकाकर मौन बैठे रहे, यह जानते हुए कि अंतर्यामी प्रभु को कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं, समाधान अंतःकरण में मिलते जाएँगे, किंतु स्थूल वाणी का प्रसाद भी वे चाहते थे, इसलिए अपनी व्यथा को उन्होंने उनके सम्मुख व्यक्त कर दिया।

कुछ पल मौन रहकर सद्गुरु दूर क्षितिज में निहारते हुए बोल पड़े—"तुम लोगों के साथ जो हुआ, उसके प्रति हमारी हार्दिक संवेदना है। निस्संदेह संतान विछोह से बड़ा सांसारिक दुःख-आघात क्या हो सकता है, लेकिन मानकर चलें कि संतान ने स्थूलशरीर ही त्यागा है, उसकी सूक्ष्म उपस्थिति यथावत् है। फिर आत्मा कभी मरती नहीं, वह तो अजर-अमर और अविनाशी है। संतान की जीवात्मा का कर्मभोग पूरा हो चुका था, इस जन्म की उसकी यात्रा यहीं तक की थी, तुम्हारे साथ उसका स्थूल लेन-देन पूरा हो चुका है। हाँ! भावनात्मक रूप से तो प्रेम का रिश्ता जन्म-जन्मांतरों तक जाता है। जीवात्मा अपनी महायात्रा पर निकल पड़ी है और

उसने अपने सत्कर्मों के अनुरूप सद्‌गति को प्राप्त किया है। उसके बारे में चिंता मत करो।''

वे बोले—''तुम उसकी महायात्रा में सहयोगी बनो, उपासना के पलों में शुभकामनाएँ संप्रेषित करो। इससे तुमको भी शांति-सुकून मिलेगा। साथ ही उसके छूटे हुए कार्यों को भी पूरा करना। उसकी छोड़ी हुई विरासत को सँभालना, उसको शांति मिलेगी। तुमको, परिवार व समाज को भी उससे सृजनात्मक दिशा मिलेगी और दु:ख-शोक के पलों को सकारात्मक ढंग से कैसे निपटा जाता है, इसका मूक प्रशिक्षण इसी तरह के शोक-संतप्त दूसरे परिजनों को भी मिलता रहेगा और इस विषादमय जगत् में शांति व आशा का संदेश प्रसारित होगा कि यह मानकर चलें कि ईश्वर का यह जगत् कर्मप्रधान है।''

गुरु आगे बोले—''वे स्वयं भी जब धरती पर मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं, तो इसी विधान के अंतर्गत विचरण करते हैं। इस जीवन व सृष्टि में सब कुछ कर्मों के इर्द-गिर्द ही गुँथा हुआ है और कर्मफल का यह सिद्धांत अकाट्य है। अत: जाओ, अपने कर्मों पर ध्यान दो। वर्तमान में जियो, अपने कर्त्तव्य का पालन करो, हर रोज सत्कर्मों व पुण्य की पूँजी को अर्जित करते चलो। अपनी अंत:प्रेरणा से जो उचित लगे, उसमें अपने मन को रमाते चलो। सर्वोपरि गुरु की आज्ञा को स्मरण रखो व उनको प्राणपण से जीवन में धारण करने की साधना में निमग्न रहो।

''फिर इस नश्वर जगत् में मृत्यु सबकी तय है, हमारी भी और तुम्हारी भी। इसलिए अब अपनी महायात्रा की तैयारी करो। **'हर दिन नया जन्म, हर रात नई मृत्यु'** का अभ्यास करो। आत्मबोध के साथ दिन का शुभारंभ करो और दिन भर के क्रियाकलापों की समीक्षा करते हुए रात को सोते समय निद्रारूपी मौत की गोद में प्रवेश करो। इस तरह प्रतिदिन मृत्यु का अभ्यास करो और यदि कभी किसी पल मृत्यु का साक्षात्कार होता है, तो तुम स्वयं को इसके लिए तैयार पाओगे और ऐसे में मृत्यु तुम्हारे लिए भयाक्रांत होने का अवसर नहीं, बल्कि महायात्रा पर आगे बढ़ने का एक उत्सव बन जाएगी।''

सद्‌गुरु की अमृतवाणी सुनते-सुनते जैसे उनके मन के तमाम प्रश्नों के उत्तर मिल गए थे, चित्त का संताप हलका हो चुका था व जीवन एक दिव्य बोध के साथ प्रकाशित हो चुका था। मन शांत-स्थिर व प्रफुल्लित था। वीतराग सद्‌गुरु महाप्राज्ञ को साष्टांग प्रणाम करते हुए उन्होंने विदा ली और अपने कर्मक्षेत्र, अपने गृहप्रदेश की ओर वापस लौट चले। ❑

माता से व्याकुल होकर कहो। उनके दर्शन होने पर विषय-रस आप ही सूख जाएगा। कामिनी-कांचन की आसक्ति सब दूर हो जाएगी। 'अपनी माँ हैं' ऐसा बोध हो जाने पर इसी समय मुक्ति हो जाएगी। वे कुछ धर्म की माँ थोड़े ही हैं, अपनी माँ हैं। व्याकुल होकर माता से कहो—हठ करो। बच्चा पतंग खरीदने के लिए माता का आँचल पकड़कर पैसे माँगता है और माँ भी सब कुछ छोड़कर बच्चे की जिद पूरी करती है। इसी तरह तुम भी माता से हठ करो, वे अवश्य ही दर्शन देंगी।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा-9

घर को तपोवन बनाने की जीवन-साधना



सिद्धांततः गुरुदेव तपोवन में घर बनाने के पक्ष में नहीं थे। वे घर को तपोवन बनाने की प्रक्रिया पर सदा जोर देते रहे और 60 वर्ष तक उन्होंने किया भी यही। अक्सर वे कहा करते थे कि तपोवन में जाओ मत, उसे घसीटकर भीतर लाओ। उनका यह प्रतिपादन पिछले कुछ दिनों चल पड़ी इस मान्यता का निराकरण करने के लिए था कि यह संसार माया और मिथ्या है, इसे छोड़कर कहीं एकांत सुनसान में चला जाना चाहिए।

स्त्री, पुत्र, घर, परिवार भव-बंधन हैं, इन्हें छोड़ देना चाहिए। स्त्री नरक की खान है, उससे बचना चाहिए आदि मान्यताएँ आज की परिस्थिति में सर्वथा निरर्थक ही नहीं, हानिकारक थीं, सो उन्होंने अपना आदर्श इस रूप में प्रस्तुत किया जिससे सिद्ध कर सकें कि घर-गृहस्थ में रहकर संत का सारा प्रयोजन पूरा किया जा सकता है और आत्मिक प्रगति के चरम लक्ष्य तक बिना किसी अड़चन के पहुँचा जा सकता है।

कोई समय था, जब आबादी बहुत कम थी और सघन वन सर्वत्र फैले पड़े थे। इतनी सुविधा थी कि उन प्रदेशों में लगे हुए कंदमूल फलों पर वहाँ के निवासी का सुविधापूर्वक निर्वाह होता रहे। गोपालन के लिए विस्तृत वन्यप्रदेश मौजूद था। कृषि करने और शाक-फल उगाने की भी सुविधा थी, जीवन-निर्वाह के सभी सुविधाजनक साधन उन दिनों मौजूद थे।

वहाँ रहकर स्वाध्याय, लेखन, अन्वेषण, गुरुकुल चिकित्सालय आदि कितने ही उपयोगी कार्य निश्चित रूप से किए जा सकते थे। प्रकृति की समीपता शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उपयोगी रहती है। समर्थ बच्चों को घर, परिवार, कृषि-व्यवस्था का उत्तरदायित्व उठाने देकर ढलती आयु के लोग लोक-मंगल के लिए उस समय की सुविधा तथा अभिरुचि के अनुकूल घनी आबादी से हटकर प्रकृति के सान्निध्य को अपने क्रिया केंद्र बनाते थे और वानप्रस्थ अथवा संन्यासी जीवन बिताते हुए आश्रम में संघबद्ध जीवनयापन करते हुए परमार्थ प्रयोजनों में संलग्न बने रहते थे। उन दिनों यह प्रक्रिया सबके लिए सब प्रकार उपयोगी भी थी। वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुरूप इस पद्धति से चार आश्रमों का क्रम भी ठीक बैठ जाता था। अस्तु उस परिपाटी से व्यक्ति, समाज एवं संस्कृति का हितसाधन ही होता था।

आज की घर त्यागकर निकल भागने और संसार को माया-मिथ्या बताकर कर्त्तव्य-उत्तरदायित्वों को तिलांजलि देने की, साधु-बाबा बनने की प्रवृत्ति में और प्राचीनकाल की ढलती आयु में परमार्थ प्रयोजनों के लिए शांतिप्रिय जीवनपद्धति अपना लेने के उद्देश्यों में जमीन-आसमान जितना अंतर है।

ईश्वर का बनाया हुआ यह संसार भव-बंधन कैसे हो सकता है? नारी में आदि शक्ति की आभा चमकती है और बालकों की निर्मलता में भगवान की झाँकी होती है, उन्हें पाप-मूल कैसे कहा जाए? असफलताओं, उद्विग्नता और मनोविकारों से अशांत व्यक्ति के लिए जंगल में शांति मिलेगी? एकांत तो जन कोलाहल से भी कठिन पड़ता है। स्वार्थ को सीमित करके केवल अपने ही निर्वाह तथा स्वर्ग मुक्ति की

चिंता में डूबा व्यक्ति आत्मविकास और साक्षात्कार का अवसर कहाँ पा सकता है। आज लोग जिस आधार को लेकर घर त्यागते और साधु बनते हैं, उसका मूल ही गलत है, फिर सफलता कैसे मिले?

अपने देश में 56 लाख व्यक्तियों का जनसमूह साधु-बाबा बना शांति पाने, अलग भगवान को ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर भागता फिरता है । इनका निर्वाह-व्यय गरीब जनता को वहन करना पड़ता है। वे अनुत्पादक जीवन जी कर राष्ट्रीय संपदा अभिवर्द्धन में बाधक बनते हैं। हराम की रोटी खाने से आत्महीनता, अकर्मण्यता बढ़ती है समर्थ होते हुए भी व्यक्तिगत लाभ के लिए भिक्षा माँगने को लज्जाजनक दुष्टप्रवृत्ति को पोषण भी मिलता है।

'खाली दिमाग शैतान की दुकान' वाली उक्ति इस प्रकार के लोगों पर ही लागू होती है, जो निरर्थक बैठा रहेगा और मुफ्त का माल भरेगा उसके मस्तिष्क में खुराफातें ही उठेंगी। सो यह प्रत्यक्ष दिखता भी है। यह वर्ग चुपचाप रोटी तोड़ता रहे सो भी नहीं, व्यसन, भ्रांतियाँ, मूढ़ताएँ फैलाते, चेला मूड़ने के जाल रचते और न जाने क्या-क्या कहते-करते देखे जाते हैं।

यह स्थिति गुरुदेव को सदा अखरी और उन्होंने अध्यात्मप्रेमियों को यही समझाया कि आज घर को ही तपोवन बनाने की आवश्यकता है और यदि वह ठीक ढंग से किया जा सके तो आत्मकल्याण के सारे प्रयोजन घर में ही पूरे हो सकते हैं। अपने इस कथन को उन्होंने चरितार्थ करके भी दिखाया और एक ऐसे सद्गृहस्थ का स्वरूप प्रस्तुत किया, जिस पर हजार गृहत्यागियों को निछावर किया जा सकता है।

किसी धर्मपरायण ईश्वरभक्त या लोकसेवी को वेश बदलने की अपनी विशेषता का विज्ञापन करने की जरूरत नहीं है। वेश को मान्यता मिल जाए तो कितने ही रँगे सियार इस तरह का आवरण ओढ़कर उल्लू सीधा करते रह सकते हैं। वेश नहीं, गुणों को धारण करने के पक्ष में वे थे। इसलिए उन्होंने आदि से अंत तक सामान्य नागरिकों जैसी वेशभूषा ही प्रयोग की। वे इस युग के सर्वमान्य धार्मिक नेता था।

कई मित्र उन्हें सुझाया करते थे कि आप कुछ तो संत-ब्राह्मणों जैसी रंगीन दुपट्टा जैसी पोशाक बदलते, दाढ़ी-केश रखाते; जिससे आपकी धार्मिकता का परिचय लोग प्राप्त कर सकते। उन्होंने इससे सदा असहमति प्रकट की और कहा—"जनता में यह विवेक-बुद्धि जगनी चाहिए कि व्यक्ति को उसके आवरण से नहीं गुण, कर्म से परखें। इस विवेकशीलता के विकसित करने में कलेवरों का बदलना सहायक ही नहीं, बाधक ही होगा। वास्तविकता में इतनी प्रखरता होनी ही चाहिए कि वे बिना वेश के भी अपनी विशेषता प्रकट कर सके। उन्होंने वेश नहीं बदला, सामान्य पोशाक ही पहनते रहे और दाढ़ी बढ़ाना तो दूर तिलक लगाने तक के लिए तैयार न हुए। ❑

वन्दे महानन्दमनन्तलीलं महेश्वरं सर्वविभुं महान्तम्।
गौरीप्रियं कार्तिकविघ्नराज समुद्भवं शंकरमादिदेवं॥

अर्थात जो परमानंदस्वरूप हैं, उन अनंत लीलाओं के स्वामी, सर्वव्यापक, महान, गौरी के प्रियतम तथा स्वामी कार्तिक और विघ्ननाशक गणेश जी को उत्पन्न करने वाले उन आदिदेव, महादेव, मृत्युंजय, विरूपाक्ष, विश्वरूप, त्रिनेत्रधारी, त्रिपुंडधारी भगवान शंकर की मैं वंदना करता हूँ।

विवेकपूर्ण समाधान



विवेक असंभव को संभव बनाता है। हम चीजों को संभव बनाते हैं, हम सबने चीजों को संभव बनाया है। कई बार असंभव को संभव में बदला है। हम सबके पास जीत की ऐसी कहानियाँ हैं, जब लोग सारी मुश्किलों को पार करते हुए आगे बढ़े और अपने कार्य को अंजाम तक पहुँचाया और इन सारी कहानियों में एक बात समान है और वह यह कि हमारे पास करने के अलावा दूसरा कोई विकल्प मौजूद नहीं था।

जब दबाव बढ़ता है और कोई बहाना स्वीकार्य नहीं होता है। जब दाँव पर बहुत कुछ लगा हुआ होता है, तब हम किसी भी कीमत पर करने वाली स्थिति में आ जाते हैं और काम को पूरा करके दम लेते हैं। अगर हमारा कोई अपना सघन चिकित्सा कक्ष में भरती है तो उसके जीवन को बचाने के लिए जो भी आवश्यक होगा, हम उसके लिए कुछ भी करेंगे, किसी भी कीमत पर करेंगे।

मान लीजिए कि हमारे परिवार के लोग, उनके सपने, उनकी उम्मीदें पहले से ही आईसीयू में हैं। उनकी सेवा करना, उनके सपनों को पोषित करना और उनके भविष्य को सुरक्षित करना आसान नहीं है, लेकिन इसके लिए जो भी करना जरूरी है, वह हमको हर कीमत पर करना चाहिए।

अगर हम लक्ष्य तक पहुँचने के लिए शॉर्टकट अपनाने का प्रयास करते हैं तो दौड़ में और जिंदगी में अयोग्य घोषित कर दिए जाएँगे। इतिहास साक्षी है कि जिन लोगों ने शॉर्टकट का सहारा लिया, वे थोड़े समय के लिए सफल तो हो गए, पर हम यह भी पाएँगे कि वैसे लोग फिसलकर उसी जगह पर आ गए, जहाँ से उन्होंने शुरुआत की थी।

लोग शॉर्टकट का आश्रय तभी लेते हैं, जब उनमें किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हरसंभव कोशिश करने की इच्छा समाप्त हो जाती है और इस तरह हम अपने सपनों को छोटा करते जाते हैं। हम जो चाहते हैं, उसे हासिल करने से हमको कोई भी नहीं रोक सकता, लेकिन ऐसा तभी संभव है, जब हम अपने रास्ते में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए कुछ भी करने को तैयार हों।

यहाँ तक कि ऐसी चीजें करने के लिए भी तैयार हों, जो पहले कभी नहीं की हों और ऐसी चीजें करने को तैयार हों, जिनकी अपेक्षा हमसे नहीं की जाती है। हमारे जीवन में तब एक नया बदलाव आएगा, जब हम चुनौतियाँ स्वीकार करेंगे और समस्याओं से भागने के बजाय उन्हें अच्छे से सुलझाएँगे।

समस्या की यही परिभाषा है। वह हमारे मन में स्वाभाविक डर बिठा देती है। हम उसे आत्मविश्वास के सहारे से, अपने प्रति भरोसे के सहारे से, अपने जुनून से तोड़ते हैं। हमारे सपने हमारे लिए उन अस्थायी संघर्षों से ज्यादा अहम हैं, जिन्हें पीछे छोड़कर हमको आगे बढ़ना है। हर चुनौती के अंत में एक व्यक्तिगत सफलता हमारा इंतजार कर रही होती है।

'किसी भी कीमत पर करो' का मतलब है कि अगर चीजें काम नहीं कर रही हैं तो अपनी गति तेज करना चाहिए, वैकल्पिक रास्ते तलाशने चाहिए एवं परिस्थितियों से सामंजस्य बैठाना चाहिए। सामान्य

शब्दों में कहें तो वह सब कुछ करना चाहिए, जो मनोवांछित परिणाम पाने के लिए आवश्यक हो।

अगर हम किसी से संपर्क करना चाहते हैं और संपर्क नहीं हो पा रहा है तो बार-बार संपर्क करने की कोशिश करनी चाहिए। अगर तब भी संपर्क नहीं होता तो और सामर्थ्य के साथ संपर्क करने का प्रयास करना चाहिए। तब भी संपर्क नहीं होता तो उसे ढूँढ़ने का प्रयास करना चाहिए या अपने दोस्तों-रिश्तेदारों का सहयोग लेना चाहिए और हमें तब तक प्रयास करना चाहिए, जब तक कि संपर्क नहीं हो जाता।

एक पुरानी कहानी है। यूनान में एक हमला हुआ और एथेंस के सारे प्रतिष्ठित लोग पकड़ लिए गए। सौ प्रतिष्ठित लोगों को जंजीरों में बाँधकर, बेड़ियाँ पहनाकर जंगलों में फेंकने की तैयारी की जाने लगी। यह सोचा गया कि जंगली जानवर उन्हें खा लेंगे। उन बेड़ियों में प्रतिष्ठित लोहार का जोड़ था। वह जोड़ आसानी से टूटता नहीं था।

सैनिक सभी को जंगलों की ओर ले जा रहे थे। सब दु:खी थे, रो रहे थे, बस, एक लोहार को छोड़कर। लोहार गीत गुनगुना रहा था। उनमें से एक ने पूछा—''तू हँस रहा है, पागल हो गया है? हम मरने की तरफ जा रहे हैं, तू होश में तो है?'' लोहार ने कहा—''मैं लोहार हूँ। जीवन भर मैंने जंजीरें ही बनाई हैं। जो बना सकता है, वह मिटा भी सकता है। घबराओ मत! मैं अपनी जंजीरें तोड़ लूँगा, साथ ही तुम्हारी भी तोड़ दूँगा। तुम चिंता न करो। एक बार इनको हमें फेंककर जाने दो, बस! मैं इसकी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि कब हमें ये फेंक दें और जाएँ। देर न लगेगी।''

सबमें हिम्मत आ गई। सबमें साहस आ गया। दुश्मन उन्हें जंगल में छोड़कर भाग गए। बचने की कोई उम्मीद न थी, रात होने के करीब थी और जंगली जानवरों की अब आवाजें भी आ रही थीं। सारे लोग घिसटकर लोहार के पास इकट्ठे होने लगे। उन्होंने देखा कि वह तो रो रहा है। वे बोले—''क्या हुआ? अभी तुम गीत गा रहे थे, अब तुम रो रहे हो?''

लोहार ने कहा—''ये जंजीरें नहीं टूटेंगी। ये तो मेरी ही बनाई हुई हैं। इन्हें तो कोई भी तोड़ नहीं सकता। मैं भी नहीं। इन पर तो मेरे हस्ताक्षर हैं। इन्हें तोड़ना असंभव है। मैं ऐसी चीजें बनाता ही नहीं, जो टूट सकें।'' हम सब भी अक्सर खुद को लोहार की तरह अपनी ही बनी जंजीरों में फँसा पाते हैं। सोचते हैं कि अब कुछ नहीं हो सकता।

लोहार का काम अच्छा था, पर असली कुशलता इसी में है कि हम यह भी जान लें कि जो जंजीरें बनाई हैं, उन्हें तोड़ना कैसे है? और यकीन मानिए कि हम सब लोहार से अधिक कुशल हैं। समस्याओं से कुशलतापूर्वक निकलना ही सार्थक समाधान है और यह विवेक द्वारा ही संभव हो सकता है। विवेक असंभव को संभव करता है। ❑

बड़प्पन को कमाना ही पर्याप्त नहीं होता, उसे सुस्थिर रखने और सदुपयोग द्वारा लाभान्वित होने के लिए समझदारी, सतर्कता और सूझ-बूझ चाहिए। भाव-संवेदनाओं से भरे-पूरे व्यक्ति ही उस रीति-नीति को समझते हैं, जिसके आधार पर संपदाओं का सदुपयोग करते बन पड़ता है।

—परमपूज्य गुरुदेव

ज्ञान व कर्म

बुद्धि-कौशल का अपना महत्त्व है, पर वो तभी प्रभावी हो पाता है, जब वह कर्मरूप में परिणत हो सके। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि ज्ञान को पचाने के लिए कर्म की जरूरत पड़ती है, नहीं तो वह अपच को जन्म देता है और व्यक्तित्व के विकृत होने का आधार बनता है। ऐसे में मात्र योजनाएँ बन पाती हैं, पर धरातल पर उनका कोई स्वरूप नहीं दिखाई पड़ता।

इसीलिए कहा भी गया है कि अनजान, अबोध पशु भी अपना निर्वाह शांतिपूर्वक कर लेते हैं, किंतु जानवरों का अंतःकरण और विवेक यदि जाग्रत न हों तो वह बुद्धि-कौशल मात्र आत्म-प्रवंचना बनकर रह जाता है। नीतिकार ने कहा है कि

यस्तु मूढ़तमं लोके यस्तु बुद्धि परंगता।
उभौतोसुखमश्नुते मान्यैवमितरोजनाः ॥

अर्थात संसार में दो ही सुखी रहते हैं। एक या तो मूढ़तम, दूसरे पारंगत बुद्धि वाले। शेष सब जीवन में दुःखी ही देखे जाते हैं। मूढ़ों में वे गिने जाएँगे, जो पेट भरने और परिवार बड़ा करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोच पाते और पारंगत बुद्धि वाले वे, जो कर्म में ज्ञान को निरत करके जीवन को पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचाते हैं और उसी आधार पर श्रेय-सम्मान को प्राप्त करने के अधिकारी बनते हैं।

जैसे धन का सदुपयोग न किया जाए, उचित तरह से निवेश न किया जाए तो कठिन समय आने पर वह दुर्गति-दुर्भाग्य की राहें खोलता है—वैसे ही, ज्ञान का निवेश भी कर्मरूप में करना अनिवार्य हो जाता है। यदि उसे कर्मरूप में परिणत होने का अवसर न मिले तो वह संग्रहकर्त्ता को परेशान करके रख देता है।

मात्र ज्ञान का संचय बुद्धिविलास बनकर रह जाता है। यह कुमार्ग नहीं है, पर इसे स्तुत्य भी नहीं कहा जा सकता। ज्ञान की सार्थकता तभी है, जब उसकी कर्म में परिणति हो। समाज ऐसे ही व्यक्तित्वों को मार्गदर्शक रूप में स्वीकार करता है, जो कर्मरूप में अपने बुद्धिकौशल को परिणत कर पाते हैं। ❑

स्वामी विवेकानंद से विदेशी शिष्यों ने पूछा—"ज्ञानी के क्या लक्षण हैं ?" वे बोले—"उनके गुरु कहा करते थे कि बच्चे में आसक्ति नहीं रहती। अभी उसने घरौंदा बनाया। कोई उसे छू ले तो तिनककर नाचने लगे, रोना शुरू कर दे, परंतु खुद ही थोड़ी देर में उसे बिगाड़ डालता है। अभी-अभी देखो तो कपड़े पर रीझा हुआ है। कहता है—'मेरे बाबूजी ने लिया है, मैं नहीं दूँगा।' परंतु एक खिलौना दो, बस भूल जाता है, कपड़े को वहीं छोड़कर चला जाता है। यही सब ज्ञानी के लक्षण हैं। चाहे घर में बड़ा ऐश्वर्य हो, परंतु दिल में आ जाए तो सब छोड़-छाड़कर काशी की राह पकड़ ले।"

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

एकाग्रता का रहस्य



एकाग्रता एक प्रक्रिया है और मन यंत्र। मन से एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिए। हमारी एकाग्रता में बाधक बनता है हमारा मन। यदि मन में प्रसन्नता हो तो वह पल भर में एकाग्र हो जाता है। इसके लिए हमें मन के दरवाजे खोलकर रखने पड़ेंगे। प्रसन्नचित्त में एकाग्रता स्वाभाविक होती है। इसका हमें अनुभव है।

हम देखते हैं कि दो-चार चीजों की ओर ध्यान देना हमारे लिए मुश्किल पड़ता है। उसके लिए हमें जरा मेहनत करनी पड़ती है, लेकिन एकाग्रता तो सहज ही हो जाती है। उसके लिए कोई कोशिश नहीं करनी पड़ती है। करने में कुछ विशेष मेहनत नहीं करनी पड़ती है। चित्त को इधर-उधर दौड़ाना भी नहीं है। एक जगह बैठे रहना है, फिर उसमें परेशानी क्या है।

अगर परेशानी है तो वह चारों ओर दौड़ने में है। इसलिए मानसिक हलचलें अस्वाभाविक होनी चाहिए और एकाग्रता स्वाभाविक। जब चित्त पर संस्कार नहीं होते तो स्मृति भी नहीं होती। हम कभी-कभी नक्शा देखते हैं, तब मन की स्मृतियाँ इधर-उधर दौड़ती हैं। स्मृतियों के कारण मन कहाँ-से- कहाँ चला जाता है। इस तरह की अनेकविध स्मृतियाँ चित्त में होती हैं। इसी को अशुचिता कहते हैं। ऐसी स्मृतियों को अगर हम धो सकते हैं तो चित्त के एकाग्र होने में देर नहीं लगेगी।

महाभारत में आता है कि व्यास जी की समाधि लगने में छह महीने लगे। वास्तव में पूर्ण एकाग्रता तुरंत होनी चाहिए। वह नहीं हुई। छह महीने लगे। मतलब यह कि व्यास जी को अपने चित्त के संस्कार यानी स्मृतियों को परिष्कृत करने में इतना समय लगा। यह भी हो सकता है कि स्वच्छ, निर्मल ज्ञान की प्रभा मन पर पड़े तो चित्त एकदम एकाग्र हो जाए। इसलिए परेशान होने का कोई कारण नहीं है।

ऐसे लोगों से तुलसीदास जी कहते हैं— **'बिगरी जनम अनेक की, सुधरत पल लगै न आधु'** अर्थात बिगड़ी बात को सुधरने में पल भर भी नहीं लगता। मान लीजिए दस हजार वर्ष पुराना अंधकार गुफा में है। हम लालटेन लेकर गुफा में जाएँगे तो उस अंधकार को समाप्त होने में दो-चार साल तो नहीं लगेंगे। जहाँ लालटेन पहुँची, वहाँ उस क्षण अंधकारमय संस्कार मिट सकते हैं। अंतर में एक क्षण में भी आलोक पड़ सकता है। कभी साधु-संगति से भी आलोक हो सकता है। कहीं दर्शन से भी प्रकाश मिल जाता है, तो एक क्षण में पूरा-का-पूरा मन धोया जा सकता है। यदि प्रकाश नहीं पड़ता तो धीरे-धीरे धोना पड़ता है।

यह एक लंबी साधना है। बहुत बड़ी मंजिल है और कड़ी साधना। गौड़पाद ने बताया है कि धीरज कितनी देर तक रखना चाहिए—**'उत् बिंदुना कुशाग्रेन उत्सेद'** यानी कुशाग्र अर्थात तिनके से समुद्र का पानी निकालना। तिनके से एक-एक बूँद समुद्र से निकालो, तो जितना धीरज रखना होगा, उतने धीरज की मन को जरूरत है। उतना धीरज और उतना उत्साह मन को दिखाना होगा। मन का निग्रह करना होगा। इस तरह उत्साह से और धीरज से काम करने से मन का निग्रह होता है।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

इस संदर्भ में तुलसीदास जी कहते हैं—'**सुधरत पल लगै न आधु**' एक ओर धीरज बताया है तो दूसरी ओर यह बताया है कि एक क्षण में काम हो सकता है। काम हो सकता है, पर इसके लिए मन के दरवाजे खुले होने चाहिए। कहीं से भी ज्ञान मिलता है तो लेने की तैयारी सदा रहे। ज्ञानी से ज्ञान-ज्योति तो मिलती ही है, लेकिन बच्चे से भी मिल सकती है। उसके लिए चित्त उत्सुक और खुला होना चाहिए।

उसके लिए हम हमेशा सूर्यनारायण का उदाहरण देते हैं। ज्ञानी पुरुष का लक्षण है कि वह दरवाजे को धक्का देकर अंदर प्रवेश नहीं करता, बल्कि दरवाजा खुल जाए तभी वह अंदर आता है वरना बाहर ही खड़ा रहता है। वैसे ही चित्त का दरवाजा भी अगर खोल दिया जाए और चित्त में उत्सुकता और प्रसन्नता हो तो ज्ञान मिल सकता है और ज्ञानी गुरु अंदर आ सकता है। सूर्यनारायण के समान ज्ञानी गुरु चित्त को धक्का नहीं देता। हृदय मंदिर खुला हो, धीरज हो, तो कहीं-न-कहीं से प्रकाश मिल ही जाता है।

चित्त की प्रसन्नता से सहज एकाग्रता आती है। चित्त की एकाग्रता के विषय में पतंजलि कहते हैं कि ध्यान योग का आचरण यम-नियमपूर्वक ही करना चाहिए, नहीं तो उससे वह तारक होने के बजाय मारक हो जाएगा। इसका अर्थ यह है कि एकाग्रता में शक्ति अवश्य है, परंतु यदि वह अनुचित हुई, तो उससे मनुष्य विनाशक भी बन सकता है। जिस बात पर चित्त एकाग्र करना है, वही यदि अशुभ हो तो परिणाम भी अशुभ ही होगा। अतः हमें अपने मन को उसमें रमाना चाहिए, जिसमें वह सहजतापूर्वक रम जाता है। इससे कार्य आसान और सहज हो जाता है तथा मन एकाग्र होने लगता है। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhand jyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

योग



योग का अर्थ आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ देने से निकलता है। क्षुद्रता को महानता के साथ, कामना को भावना के साथ, स्वार्थ को परमार्थ के साथ जोड़ देने का नाम, स्वयं को परमात्म चेतना में विसर्जित कर देने का नाम, योग कहा जा सकता है।

योग-प्रक्रियाओं में ध्यान के अभ्यास को प्रमुखता दी गई है। यह ध्यान, एकाग्रता पर आधारित है और इसका अर्थ यही है कि निकृष्टता के, लोभ-मोह और अहंता के जाल-जंजाल में जकड़े हुए मन को इन उलझनों से निकालकर निर्धारित लक्ष्य के साथ तादात्म्य स्थापित करने का अभ्यास कराना।

चेतना को उच्चस्तरीय उत्कृष्टता के साथ एकात्म कर देने का नाम ही योग कहा जा सकता है। एक तरह से यह हमारी आस्थाओं एवं मान्यताओं का परिष्कार है। अपनी भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं, लालसाओं और लिप्साओं को रौंदकर उच्चस्तरीय आदर्शों का अनुसरण करने का जो साहस जुटा पाते हैं—वे ही योगी कहे जाते हैं, ऐसा करने वालों को मन के बिखरावों को त्यागकर दिनचर्या के प्रत्येक क्रिया-कृत्य में तादात्म्य के होने का अभ्यास करना पड़ता है।

जो क्रिया के साथ मनोयोग को जोड़ पाने में सफल हो पाते हैं—वे ही भौतिक एवं आत्मिक क्षेत्र में समान रूप से सफल हो पाते हैं। ध्यान से देखें तो योग का उद्देश्य भी यही है। ध्यान यदि मात्र किसी देवता का करते रहा जाए तो उससे मन की शांति तो मिलती है, परंतु ध्यान का वास्तविक उद्देश्य परिपूर्ण नहीं हो पाता है।

ध्यान का लक्ष्य एक ही है और वह है—सर्वतोमुखी उत्कृष्टता के प्रति सघन श्रद्धा उत्पन्न करना, उसके माहात्म्य का भावपूर्ण चिंतन करना और अपनी समग्र चेतना को उसी में एकाकार कर देना। ऐसा मिलन हो जाने पर जीवात्मा की अलग सत्ता नहीं रह जाती। बूँद जब समुद्र में मिलती है तो अपना स्वरूप-स्वभाव सभी खो देती है और समुद्र-तरंगों की तरह ही लहराने लगती है।

योग का अर्थ ईश्वरमिलन से है और ईश्वरमिलन का तात्पर्य गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से ईश्वर जैसा बन जाने से है। एकरूपता को स्थापित करने के लिए मन पर संपूर्ण स्वामित्व, मनोनिग्रह अनिवार्य हो जाता है। योग-साधना के विभिन्न उपचार इसी प्रयोजन को पूर्ण करने के लिए किए जाते हैं, ताकि मन की वृत्तियाँ परिष्कृत-परिमार्जित हो सकें। यही सच्ची योग-साधना है। ❑

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सान्धमूकता।
यदन्यत्र श्रमं कुर्यान्मोक्षमार्ग बहिष्कृतः॥

अर्थात जो मोक्षमार्ग से विरत होकर अन्य वस्तुओं के लिए श्रम करता है, उसके लिए वही सबसे बड़ी हानि है, वही त्रुटि है, वही मोह है, वही अंधता है और वही मूकता है।

वैदिक काल का देवी दर्शन



प्रकृति सनातन है, शाश्वत है। प्रकृति सदा से है। सदा रहती है। प्रलय जैसी चरम प्राकृतिक आपदा में भी सब कुछ नष्ट नहीं होता है। भारतीय दर्शन की सांख्य शाखा के अनुसार तब प्रकृति के तीनों गुण सत्त्व, रज, और तम साम्यावस्था में होते हैं, लेकिन गुणों की साम्यावस्था हमेशा नहीं रहती। साम्यावस्था भंग होती है, सृजन लहक उठता है। प्रकृति का अंतस् जगत् का छंदस् बनता है। यह अंतस् अजन्मा है, दिव्य है और दैवी है। भारतीय अनुभूति में यह देवी है। माता है। हम सब माँ का विस्तार हैं। हमारे संभवन का पवित्र माध्यम दुनिया की तमाम आस्थाओं में ईश अवतरण है या दैवी ज्ञान देने वाले पूजनीय देवदूत हैं।

परमसत्ता या देवशक्ति भी इस जगत् में माँ के माध्यम से ही आते हैं। माँ न होती तो वे कैसे आते? हम सब भी यहाँ इस जगत् में कैसे होते? प्रकृति की दिव्य अंतस् चेतना को भारत ने माता कहा। भारत के प्रति अपनी गहरे प्रेम के कारण हम सबने भारत को भी भारतमाता जाना है। प्रकृति का हरेक अणु-परमाणु माँ का ही विस्तार है। इसलिए यहाँ सभी तत्त्वों, रूपों में माँ की अनुभूति है—'**या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।**'

अस्तित्व जनक है, जननी है। इसे माँ रूप में देखना अत्यंत सुखद अनुभव है। माँ को अनुभव करते हुए स्वयं को विराट से जोड़ने का अनुष्ठान ही देवी-उपासना है। हम पृथ्वीपुत्र हैं। पृथ्वी माँ है। वही मूल है, वही आधार है। इस पर रहना, कर्म करना, कर्मफल पाना और अंततः इसी के आँचल में पनाह पाना जीवनसत्य है। ऋग्वेद माता की गहन अनुभूति से भरा-पूरा है।

ऋषियों ने आनंद, उल्लास और आश्वस्ति के हरेक प्रतीक में माँ को देखा है। इन ऋषियों के लिए माता पृथ्वी धारक हैं। वे पर्वतों को धारण करती हैं, मेघों को प्रेरित करती हैं और वर्षा के जल से अपने अंतस् ओज में वनस्पतियों को धारण करती हैं। ऋग्वेद में रात्रि भी एक देवी हैं। वे अविनाशी-अमर्त्या हैं, वे आकाशपुत्री हैं, पहले अंतरिक्ष को और बाद में निचले-ऊँचे क्षेत्रों को आच्छादित करती हैं। उनके आगमन पर हम सब गौ, अश्वादि और पशु-पक्षी भी विश्राम करते हैं।

सृष्टि का विकास जल से हुआ। यूनानी दार्शनिक थेल्स भी ऐसा ही मानते थे। अधिकांश विश्वदर्शन में जल, सृष्टि का आदि तत्त्व है। ऋग्वेद में जल को भी माँ के रूप में देखा गया है। वे जल-धाराएँ **आपः मातरम्** हैं और देवियाँ हैं। माँ ही जन्म देती है। माँ नहीं तो सृष्टि का विकास नहीं। अतः ऋग्वैदिक ऋषियों की अनुभूति में संसार के प्रत्येक तत्त्व को जन्म देने वाली यही आपः माताएँ हैं। '**विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः**'।

ऋग्वेद में प्रसिद्ध देवता हैं अग्नि। ये भी बिना माता के नहीं जन्मे हैं। इन्हें भी आपः माताओं ने जन्म दिया है '**तमापो अग्निं जनयन्त मातरः**' ऋग्वेद में वाणी की देवी वाग्देवी हैं। ऋग्वेद के वाक् सूक्त में वे कहती हैं—'मैं रुद्रगणों, वसुगणों के साथ भ्रमण करती हूँ। मित्र, वरुण, इंद्र, अग्नि और अश्विनीकुमारों को धारण करती हूँ। मेरा स्वरूप विभिन्न रूपों में विद्यमान है। प्राणियों की श्रवण, मनन, दर्शन क्षमता का कारण मैं ही हूँ। मेरा उद्गम आकाश में अप् (सृष्टि निर्माण का आदि तत्त्व) है। मैं समस्त लोकों की सर्जक हूँ आदि।'

वे राष्ट्री संगमनी वसूनां—राष्ट्रवासियों और उनके संपूर्ण वैभव को संगठित करने वाली शक्ति—राष्ट्री देवी हैं। हमारे पूर्वज महान एवं श्रेष्ठ थे। उन्होंने राष्ट्र के लिए भी राष्ट्री देवी की अनुभूति प्रदान की। दुर्गा सप्तशती में निद्रा भी माता और देवी हैं। देवरूप माँ की उपासना अति प्राचीन है।

माँ से सृष्टि है, सृष्टि-प्रवाह का प्रत्यक्ष रूप ही माँ है। माँ की उपासना वैदिककाल से भी प्राचीन है। ऋग्वेद में पृथ्वी माता हैं। इड़ा, सरस्वती और मही भी माता हैं, ये तीन देवियाँ कही गई हैं—'**इड़ा, सरस्वती, मही तिस्त्रो देवीर्मयो भुव**।' एक मंत्र में भारती को भारतीभिः कहकर आवाहन किया गया है—'**आ भारती भारतीभिः**।' माँ प्रत्येक क्षण में स्तुत्य हैं। दुःख और विषाद में माँ आश्वस्तिदायी हैं तो प्रसन्नता और आह्लाद में भी माँ की उपस्थिति जरूरी है। देवी का आह्वान प्रत्येक समय ऊर्जादायी है। इसलिए भारती को नेह-न्योता है। जान पड़ता है कि भारतीभिः—भरत जनों की इष्ट देवी हैं।

ऋग्वेद में ऊषा भी देवी हैं। एक सूक्त में ये ऊषा देवी नियम पालन करती हैं। नियमित रूप से आती हैं। फिर कहते हैं, ऊषा स्वर्ग की कन्या जैसी प्रकाश के वस्त्र धारण करके प्रतिदिन पूरब से वैसे ही आती हैं, जैसे विदुषी नारी मर्यादा मार्ग से आती हैं।

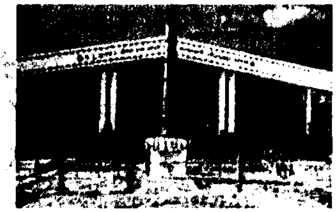
ऊषा देवी हैं, सबको प्रकाश और आनंद देती हैं। अपने-पराए का भेद नहीं करतीं, छोटे से दूर नहीं होतीं और बड़े का त्याग नहीं करती हैं। वे समद्रष्टा हैं। वे सबको समान दृष्टि से देखती हैं। ऋग्वेद में जागरण की महत्ता है, इसलिए संपूर्ण प्राणियों में सर्वप्रथम ऊषा ही जागती हैं। प्रार्थना है कि हमारी बुद्धि सत्कर्मों की ओर प्रेरित करें। ऊषा सतत प्रवाह है। वे आती हैं, जाती हैं। पुनः-पुनः आती हैं—जैसे आज आई हैं, वैसे ही आगे भी आएँगी।

मन चंचल है। यह कर्म के लिए जरूरी एकाग्रता में बाधक है। ऋग्वेद में मन की शासक देवी का नाम मनीषा है। मनीषा और प्रज्ञा पर्यायवाची हैं। ऋषि उनका आह्वान करते हैं—'**प्र शुकैतु देवी मनीषा**।' प्रत्यक्ष देखे, सुने और अनुभव में आए दिव्य तत्त्वों के प्रति विश्वास बढ़ता है, विश्वास श्रद्धा बनता है।

ऋग्वेद में श्रद्धा भी एक देवी हैं—'**श्रद्धां प्रातर्हवामहे, श्रद्धां मध्यंदिनं परि। श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः**।' हम प्रातःकाल श्रद्धा का आह्वान करते हैं, मध्याह्न में श्रद्धा का आह्वान करते हैं, सूर्यास्त काल में श्रद्धा की ही उपासना करते हैं। हे श्रद्धा! हम सबको श्रद्धा से परिपूर्ण करें। यहाँ श्रद्धा से ही श्रद्धा की याचना में गहन भावबोध है। श्रद्धा प्रकृति की विभूतियों में शिखर है—'**श्रद्धां भगस्य मूर्धनि**' देवी-उपासना प्रकृति की विराट शक्ति की ही उपासना है। दुर्गा, महाकाली, महासरस्वती, महालक्ष्मी या सिद्धिदात्री आदि सभी उन्हीं के नाम हैं। देवी दिव्यता हैं। माँ हैं। भारत स्वाभाविक ही देवी-उपासक है।

प्रकृति विकासमान है। सांख्य चिंतन में प्रकृति विकास का अगला रूप विकार है। हमारा रूप प्रकृति का ही रूप है। हम अपनी सुविधा के लिए उन्हें अनेक नाम देते हैं। दुर्गा, काली, सरस्वती, शाकंभरी, महामेधा, कल्याणी, वैष्णवी, पार्वती आदि। नामस्मरण बोध में सहायक हैं। मुख्य तत्त्व है—माँ।'**या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै, नमस्तस्यै नमो नमः**। अंधविश्वास या आस्था का कोई प्रश्न नहीं है। विज्ञान प्रकृति में पदार्थ और ऊर्जा देख चुका है। पदार्थ और ऊर्जा भी अब दो नहीं रहे। समूची प्रकृति एक अखंड इकाई है। इस अखंड इकाई का नाम क्या दें? कठिनाई बड़ी है। अखंड प्रकृति अनंत है। असीम और अव्याख्येय। इसे माँ कहने में ही परिपूर्ण ममत्व एवं प्रेम प्रस्फुटित है। ❑

गायत्री तीर्थ : जहाँ लोग तर जाते हैं



विगत अंक में आपने पढ़ा कि सन् 1982 तक गायत्री शक्तिपीठों की स्थापना, प्राण-प्रतिष्ठा के लिए परमपूज्य गुरुदेव ने लगभग 19 स्थानों की यात्रा की। गायत्री शक्तिपीठों के विस्तार की घोषणा के पश्चात विभिन्न क्षेत्रों से स्वयं पूज्यवर द्वारा शक्तिपीठों समेत प्रज्ञापीठों की प्राण-प्रतिष्ठा के क्रम को संपन्न किए जाने की माँग पर भी परमपूज्य गुरुदेव द्वारा पूर्व में ही स्वीकृति दी जा चुकी थी, किंतु 80 के दशक के पूर्वार्द्ध में इस योजना में महत्त्वपूर्ण बदलाव किए गए। क्षेत्रों में पूज्य गुरुदेव के आगमन व उन्हीं के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में मिशन के विस्तार की रूपरेखा बनाए जाने की शुभेच्छा लिए परिजनों में उनके इस पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के संबंध में अस्वीकृति चर्चा का विषय बन गया। इस परिवर्तन के पीछे के उद्देश्य को स्वयं पूज्य गुरुदेव ने अपनी लेखनी द्वारा अखण्ड ज्योति के माध्यम से प्रकट किया कि वे समय की विशिष्ट माँग को पूर्ण करने के लिए समर्थ स्तर की प्रतिभासंपन्न आत्माओं को ढूँढ़ निकालने के कार्य में संलग्न हो रहे हैं, जिन्हें युग निर्माण योजना में अतिमहत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभानी हैं। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ....

आश्रम का नया रूप

प्रसंगवश यह उल्लेख जरूरी है कि गुरुदेव के समय में ही शांतिकुंज के विस्तार और परिवर्तन ने गति पकड़ ली थी। सन् 1973 में गुरुदेव मुख्य भवन के ऊपरी कक्ष में चले गए थे। सूक्ष्मीकरण की प्रक्रिया संपन्न हो जाने तक वे इसी जगह रहे। इससे पहले वे माताजी के पास वाले कक्ष में बैठते, काम करते और आगंतुकों से मिलते थे।

नीचे शांतिकुंज के खुले परिसर में नए भवन निर्मित होने लगे थे। गायत्री मंदिर के पास देवात्मा हिमालय वाला कक्ष बनने लगा था। हिमालय दर्शन से पहले यहाँ प्रवचन हाल था और गुरुदेव शिविरार्थियों को इसी सभागार में प्रशिक्षण देते थे। सन् 1979 के आस-पास शांतिकुंज के मुख्य परिसर से लगी जमीन पर गायत्री नगर का निर्माण शुरू हो गया था। उससे पहले ब्रह्मवर्चस का स्वरूप उभर कर आया।

इन दिनों जहाँ आगंतुक अतिथि विश्राम करते हैं और दिन में अन्नप्राशन, मुंडन आदि संस्कार होते हैं, उस जगह तब पुष्प, पादप और लता-पत्रों से छाई रहने वाली वाटिकाएँ थीं। उस वाटिका को हटाने के बाद बीच वाली जगह एक गैरेज और एक ओर एक शिक्षण-प्रशिक्षण विभाग बनाया गया था। गैरेज में आश्रम की गाड़ियाँ खड़ी रहतीं।

उन दिनों गायत्री नगर का निर्माण शुरू होने तक गुरुदेव दिन में कम-से-कम एक बार आश्रम के विकास का निरीक्षण करने जरूर निकलते। कभी-कभार तो जहाँ निर्माण चल रहा होता, वहीं कुरसी लगाकर बैठ जाते। उस काम को देख रहे परिजनों से ईंट-गारे के बारे में, निर्माण की मजबूती और अगले दिन या हफ्तों की योजना के बारे में बात करते। कोई परिजन इस बीच आता तो उसे अपने कक्ष में बुलाकर मिलने के बजाय निर्माणस्थल पर ही बुला लेते और वहीं कुशलक्षेम पूछ लेते।

एक दिन माताजी ने गुरुदेव की इस रीति-नीति के बारे में पूछ ही लिया। कहा कि आप पहले तो कभी निर्माणकार्यों के निरीक्षण में इतना समय नहीं लगाते थे। माताजी अपना वाक्य पूरा करतीं इससे पहले ही गुरुदेव ने कहा—"एक नया तीर्थ विकसित हो रहा है। कोई आश्चर्य नहीं कि आने वाली पीढ़ियाँ इस तीर्थ को चार धामों की तरह महत्त्व देने लगें।" गायत्री तीर्थ का विधिवत् विकास शुरू होने से पहले गुरुदेव ने गायत्री मंदिर के पास सात ऋषियों की स्थापना की।

विश्वामित्र, वसिष्ठ, चरक, परशुराम, भगीरथ, वाल्मीकि, याज्ञवल्क्य ऋषियों की प्रतिष्ठा करते समय गुरुदेव ने उस स्थान पर रुद्राभिषेक भी कराया। अभिषेक और स्थापना के समय गुरुदेव ने इस स्थान को कल्पवृक्ष का नाम दिया। बहुत लोग इसे अब कल्पक्षेत्र भी कहते हैं। अभिषेक और स्थापना के समय गुरुदेव ने कहा कि इसे अनवरत चलने दें। ऋषि तीर्थ में श्रद्धापूर्वक दर्शन, भजन करने वालों का कल्याण होगा। उनकी लौकिक और आध्यात्मिक आकांक्षाएँ तुष्ट होंगी। शांतिकुंज में तब ऐसे साधक, परिजन और नए लोग भी आ रहे थे, जिनके लिए गुरुदेव संत हृदय और साधु पुरुष थे। उनके हिसाब से हरिद्वार आदि तीर्थों में इस तरह के संत-महात्मा बड़ी संख्या में हैं।

शांतिकुंज जैसे प्रांजल, अभिजात्य और भारतीय धर्म-संस्कृति की परिभाषा के लिए नए मुहावरे चुनने, अपनाने वाला कोई संस्थान नहीं था। अपने नाम और विशेषण से नवीनतम और पुरातन का बोध कराने वाले परिचय के बावजूद उनकी निगाहें गुरुदेव के वेश और सामान्य से दीखने वाले कलेवर पर ही अटक जाती थीं। उनके लिए आश्रम व्यक्तित्व से नहीं, वैभव और वेश-विन्यास से ही पहचाने जाते हैं। गुरुदेव के संबंध में यह विख्यात हो चला था कि उनके पास विभिन्न सभा, संगठनों और राजनीतिक दलों के लोग आते हैं।

उनसे परामर्श करते हैं और उनका समर्थन, सहयोग भी चाहते हैं, पर वे किसी का साथ देने या जुड़ने के लिए राजी नहीं हैं। आम धारणा यह बन चली थी कि किसी दल, संगठन और सभा-सोसायटी की ओर उन्हें आकर्षित नहीं किया जा सकता। आजादी के बाद से ही उन्हें लुभाने, अपनी ओर करने के प्रयास होते रहे हैं,लेकिन उन्हें जरा भी राजी नहीं किया जा सका। ऐसे व्यक्तियों के प्रति गुरुदेव सामान्य शिष्टाचार तो निभाते थे, पर उन्हें महत्त्व नहीं देते थे। कभी-कभार तो उनसे बचते भी थे।

जिन दिनों गायत्री नगर का निर्माण शुरू ही हुआ था, उन दिनों की घटना है। गुरुदेव शांतिकुंज के पिछले हिस्से में खड़े कुछ कार्यकर्त्ताओं से बातें कर रहे थे। देखा भवन के मुख्य द्वार की ओर से लगभग दौड़ते हुए एक कार्यकर्त्ता चले आ रहे थे। गुरुदेव के पास पहुँचते-पहुँचते वे हाँफने लगे थे। वह पास आकर रुके। किसी केंद्रीय मंत्री का नाम लिया और कहा कि वे पहुँचने ही वाले हैं। उनके पीए का फोन आया है। गुरुदेव ने कहा—"अच्छा, उन्हें माताजी के पास लिवा जाना। वे मंत्री जी की बात सुन लेंगी।" इतना कहकर गुरुदेव फिर अपनी चर्चा में व्यस्त हो गए।

वे मंत्री शांतिकुंज आए, माताजी के पास गए। वहाँ उनसे अपनी बात कही, जो स्पष्ट रूप से राजनीति के क्षेत्र में अपनी स्थिति मजबूत बनाने से संबंधित थी। करीब पंद्रह-बीस मिनट वे वहाँ रुके होंगे। गुरुदेव इस बीच में कार्यकर्त्ताओं से चर्चा-परामर्श करते रहे। बात पूरी हो गई तो उन्होंने पास ही खड़े एक अन्य कार्यकर्त्ता से कहा—"जरा पता करना कि मंत्री जी हैं या चले गए।"

वह कार्यकर्त्ता जानकारी लेने के लिए दौड़कर गया। लौटकर आया और बताया—"अभी नीचे उतर रहे हैं, जाने ही वाले हैं।" सुनकर गुरुदेव कुछ समय रुके। वहाँ आस-पास खड़े कार्यकर्त्ताओं को आवश्यक निर्देश दिए और गायत्री मंदिर की ओर चले गए। निर्माण और संबंधित व्यवस्था में लगे परिजन अपने-अपने काम में जुट गए थे।

पूर्व जन्म की स्फुरणा

शांतिकुंज गायत्री तीर्थ के रूप में विकसित होगा। यहाँ आने और भावभरी श्रद्धा से कुछ समय व्यतीत करने वालों को वह सब मिलेगा, जो किन्हीं और जीवंत तीर्थों में मिलता है। गुरुदेव ने सन् 1881 की गायत्री जयंती को कहा था। घोषणा सबके सामने की गई थी, इसलिए किसी के मन में जिज्ञासा उठी हो तो पूछने का अवसर नहीं मिला।

वह दिन प्रणाम-अभिवादन में ही बीत गया। अगले दिन दक्षिण के कामाक्षी मंदिर से आए अनंत मूर्ति से रहा नहीं गया। भेंट के समय पूछूँगा, यह सोचकर प्रातःकालीन जप-ध्यान में बैठा। इसी तरह के भाव वाराणसी से आए एक अन्य परिजन काशी के मन में भी उठे।

संयोग की बात कि दोनों परिजन सुबह प्रणाम के समय साथ-साथ गए। दोनों एकदूसरे से अपरिचित थे। पहले आपस में कभी मिले या अपने सामने भी नहीं हुए थे। प्रणाम के लिए गए तो दोनों ने एकदूसरे को देखा और उन्हें लगा कि हम लोग न जाने कब से एकदूसरे को जानते हैं। प्रणाम के लिए लगी पंक्ति धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। आमतौर पर सुबह के समय अखंड दीप के दर्शन कर ही परिजन लौट जाते थे।

गुरुदेव और माताजी उस समय कम ही मिलते, किंतु गायत्री जयंती के दिन आए कई साधक उस दिन प्रणाम नहीं कर सके थे। उनके लिए गुरुदेव अपने कक्ष में विराजमान थे। साथ ही माताजी भी। अखंड दीप के दर्शन कर अनंत मूर्ति और काशी धीरे-धीरे गुरुदेव के कक्ष की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। दोनों आगे-पीछे।

सीढ़ियाँ चढ़ते हुए पता नहीं क्यों यह भाव गहराता गया कि दोनों न केवल एकदूसरे से परिचित हैं, बल्कि बचपन में साथ भी रहे हैं। इस भाव बोध के साथ दोनों परिजन गुरुदेव-माताजी के सामने पहुँच गए। अनंत माताजी को प्रणाम कर आगे बढ़ा और गुरुदेव के चरणस्पर्श करने लगा। तब तक काशी ने माताजी के चरणों में सीस नवाया। दोनों प्रणत मुद्रा में थे ही कि गुरुदेव ने कहा अनंत और काशी तुम लोग जो रास्ते में सोचते हुए आ रहे हो, वह यों ही नहीं है। तुम्हारे पिछले संस्कार जागे हैं और थोड़ी देर बाद तुम्हें अपनी पुरानी बातें साफ-साफ याद आने लगेंगी।

गुरुदेव के वचनों को सुनकर अनंत और काशी, दोनों हतप्रभ रह गए। दोनों को अभी तक एकदूसरे का नाम भी नहीं मालूम था। गुरुदेव ने पुकारा तब नाम पता चला। दोनों एकदूसरे का मुँह देखने लगे। गुरुदेव ने अनंत और काशी के सिर को हलके से थपथपाया और दोनों आगे खिसक गए।

इस घटना के बारे में किसी को पता नहीं चलता। अनंत ने करीब सप्ताह भर बाद माताजी को पत्र लिखा। दो दिन बाद काशी का पत्र भी आया। उन दोनों ने कहा था कि हम दोनों पिछले जन्म में गुरुदेव के साथ थे, सहोदर भाई की तरह काम करते थे। धीरे-धीरे सब याद आ गया है कि मथुरा के सहस्रकुंडीय महायज्ञ में स्वयंसेवक बनकर आए थे।

करीब तीन साल तक साथ-साथ काम किया। फिर एक सड़क दुर्घटना में शरीर छूट गया। शरीर छूटते समय मन में यही भाव रहा कि अगले जन्म में फिर गुरुदेव के चरणों में ही स्थान देना। यह कामना

पूरी होने जा रही है। माताजी ने दोनों को महीने भर बाद शांतिकुंज आने और चालीस दिन का अनुष्ठान करने के लिए कहा।

अनंत मूर्ति और काशीनाथ दोनों ने सावन में शांतिकुंज आकर गुरुदेव-माताजी के आदेश अनुसार गायत्री पुरश्चरण किया। जन्माष्टमी तक वे यहीं रहे और जाने लगे तो गुरुदेव के सामने पहुँचते हुए रुलाई फूट पड़ी।

लगा कि इस सान्निध्य के लिए पूरे जन्म प्रतीक्षा करनी पड़ी है। अगली भेंट पता नहीं कब हो। अपनी व्यथा सुनाना शुरू की तो गुरुदेव ने कहा— "मैं हर क्षण तुम्हारे साथ ही रहूँगा। साँसों में और हृदय की धड़कन में भी। जाओ, दोनों मिलकर तुंगभद्रा के किनारे गायत्री माता का काम करो। वहाँ ज्ञानयज्ञ को प्रमुखता देना। हम लोगों (गुरुदेव और माताजी) को हृदय में मौजूद पाओगे।"

गुरुदेव का यह आश्वासन पाकर अनंत और काशी नीचे उतरने लगे। सीढ़ियों से उतरे ही थे कि काशी ने कहा—भाई मुझे एक बात समझ नहीं आई। अनंत ने काशी की ओर देखा जैसे पूछ रहा हो कि क्या बात है। काशी ने कहा—"हम लोग गायत्री जयंती के दिन गुरुदेव का प्रवचन सुनकर सोच रहे थे कि गुरुदेव से तीर्थ के बारे में पूछेंगे। उनसे कहेंगे कि शांतिकुंज को अपने पुराने तीर्थों में स्थान कैसे मिल जाएगा। यह सब तो हम अभी तक नहीं पूछ पाए।"

कहते हुए काशी के चेहरे पर अहो और आश्चर्य के मिले-जुले भाव उभर आए। सुनकर अनंत की आँखें चौड़ी हो गईं और ओंठ खिले। फिर वह कहने लगा—"अब भी पूछने की जरूरत है क्या? बिना पूछे ही गुरुदेव ने सब बता दिया।" दोनों ने तुंगभद्रा के तट पर गायत्री-साधना के प्रचार का ताना-बाना बुनना शुरू कर दिया।

दक्षिण भारत की यह पवित्र नदी कर्नाटक और आंध्रप्रदेश में बहती हुई कृष्णा नदी में मिल जाती है। गंगा और यमुना की तरह तुंग और भद्रा नदी के संगमस्थल शिमोगा के पास अनंत और काशी ने गायत्री-प्रचार का निश्चय किया। काशी ने इसके लिए अपने गृहनगर वाराणसी को छोड़ देने का मन भी तुरंत बना लिया। दोनों की उम्र बाईस-तेईस साल थी। पारिवारिक जिम्मेदारियाँ कुछ खास नहीं थीं, इसलिए दोनों ने तुरंत काम शुरू करने का निश्चय किया।

तीर्थों का महत्त्व उस नगर या बस्ती के कारण नहीं होता। उसे जीवंत बनाते हैं वहाँ के देवता, ऋषि और शक्ति। इन तीनों अधिष्ठाताओं को उस स्थान पर एकत्र होने और आते-जाते रहने वाले यात्रियों की साधना पोषित करती है।

गुरुदेव ने उन्हीं दिनों एक व्याख्यान में कहा था कि हम इस स्थान को इतना तप्त और ऊर्जावान बनाए जा रहे हैं कि जो यहाँ अपनी उपस्थिति दर्ज करा जाएँगे, उन्हें भी प्रकाश और आत्मिक बल मिलेगा। शर्त सिर्फ एक ही है कि यात्री अपने आप को, अपने चित्त और मन-मानस को खुला रखें। उनकी चेतना में अनुदान बरसेंगे। चित्त और चेतना को बंद रखा गया तो सीप खोल की तरह खाली ही रह जाएगा। उसमें मोती बनने वाली बूँद प्रवेश नहीं पा सकेगी।

शक्तिपीठों के उद्घाटन, प्रवास के दिनों में गुरुदेव गायत्री नगर को तीर्थ की सामर्थ्य से संपन्न कर रहे थे। कुछ प्रयोग तो परिजनों को स्पष्ट अनुभव होते थे, लेकिन कई अविज्ञात भी थे। कभी-कदा किसी साधक को उनका आभास हो जाता था।

सामान्य दिनों में गुरुदेव शाम के समय आश्रम के कार्यकर्त्ताओं को बुलाकर यहाँ की भावी रीति,

नीतियाँ और मर्यादाओं के बारे में समझाते थे। इन गोष्ठियों में आश्रम में निवास कर रहे परिवारों की गृहणियाँ और बच्चे भी शामिल होते। चर्चा में सामान्य जीवन के विषय ही होते। व्यवहार, नियमित दिनचर्या, स्वच्छता, श्रमशीलता, विनय, नियमित साधना आदि की बारीकियों पर गुरुदेव इस तरह समझाते, जैसे ये विषय ब्रह्मविद्या के गूढ़ रहस्य हों।

वे कहते भी थे कि सभी बच्चे इन मर्यादाओं का निष्ठापूर्वक पालन कर रहे हैं। यह बात हम लोगों को पता है, लेकिन इन बातों का स्मरण और अनुस्मरण अत्यंत आवश्यक है तभी ब्रह्मविद्या के रहस्य प्रकट होते हैं। विद्या का तत्त्वदर्शन तो एकाध सूत्रवाक्य में ही आ जाता है। असल बात उसे जीवन में उतारने की कला है। गायत्री नगर को जीवंत तीर्थ बनाने के उनके अपने प्रयास जैसे-जैसे सूक्ष्म और गहन होते गए, वैसे-वैसे व्यावहारिक शिक्षण की गति भी बढ़ने लगी।

बाद में होने वाले साधना सत्रों में भी आध्यात्मिक व्यायाम अथवा दैनंदिन साधना के साथ इन बारीकियों का विवेचन किया जाता। इस बीच एक महत्त्वपूर्ण प्रकल्प गायत्री परिजनों के बच्चों के लिए गायत्री विद्यापीठ के निर्माण का भी बना। (क्रमशः)

मगध में भयंकर अकाल पड़ा। भीषण गरमी से धरती जलने लगी और क्षुधा के कारण प्रजा त्राहि-त्राहि करने लगी। सम्राट चंद्रगुप्त ने अपने राजकोश को प्रजा की सहायता के लिए खोल दिया और साथ ही सबको स्थान-स्थान पर यज्ञ करने का निर्देश दिया, ताकि वरुण देव उनसे पुष्ट होकर वृष्टि करने में सक्षम हों। पाटलिपुत्र में भी यज्ञ का आयोजन किया गया, जिसमें सात दिन तक निराहार व्रत का पालन करते हुए सम्राट ने मुख्य यजमान की भूमिका निभाई।

इसके बाद सम्राट व साम्राज्ञी ने बंजर भूमि पर हल चलाना प्रारंभ किया। हल के जमीन पर लगते ही वहाँ एक आकृति प्रकट हुई और सम्राट को संबोधित करते हुए बोली—"लोग श्रम की उपेक्षा कर रहे हैं, इसीलिए यह दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ है। यदि प्रजा पुनः श्रम करना आरंभ कर दे तो खुशहाली के दिन पुनः वापस आ जाएँगे।" यह दृश्य देखकर प्रजा को श्रम का महत्त्व ज्ञात हुआ और सभी श्रम करने में जुट गए। थोड़े परिश्रम से नहर खोद ली गई और बंजर भूमि पर पानी की धारा बह निकली। श्रम के देवता ने सबको पुनः समृद्ध कर दिया।

स्वाध्याय बने जीवन का अभिन्न अंग



स्वाध्याय का अर्थ है स्वयं का अध्ययन। प्राय: हम दूसरों का और बाह्य जगत् का अध्ययन करते रहते हैं, लेकिन हमारे पास स्वयं के अध्ययन का समय नहीं रहता।

परिणामस्वरूप हमारे ऊपर दूसरों का तथा परिवेश-वातावरण का रंग चढ़ता रहता है, मन कुविचारों की धूल-गुबार से मटमैला होता रहता है और जीवन सांसारिक विकारों के कीचड़ में धँसता जाता है। स्वाध्याय हमें जीवन की इस त्रासदी से उबारता है।

जीवन में हर वस्तु नियमित समय पर साफ-सफाई की माँग करती है। घर में झाड़ू-पोंछे से लेकर नित्य ब्रश, शौच-स्नान आदि इसी निमित्त किए जाते हैं। प्रतिदिन हम शारीरिक व बाहरी सफाई के प्रति सचेष्ट रहते हैं, लेकिन जब बारी मन की आती है, तो अधिकांश लोग उदासीन पाए जाते हैं।

परिणामस्वरूप तरह-तरह के विकार मन पर निर्बाध रूप से चढ़ते जाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर जैसे षड्रिपु मन पर कब अधिकार जमा बैठते हैं, पता भी नहीं चलता, जो कुविचारों, दुर्भावनाओं एवं कुसंस्कारों के रूप में मन, बुद्धि व चित्त को मलिन किए रहते हैं तथा जीवन में नाना प्रकार से कलह-क्लेश, रोग-शोक व संकट की परिस्थितियाँ खड़ी करते रहते हैं।

इस तरह विकारों से जकड़ा हुआ मन मनुष्य के बंधन का कारण बनता है। यदि मन को इनसे मुक्त करना शुरू कर दें, तो यही मनुष्य की मुक्ति का कारण बनता है। स्वाध्याय इस दिशा में निर्णायक भूमिका निभाता है।

स्वाध्याय के प्रकाश में अंत:करण के कोनों में छिपे हुए दोष-दुर्गुण एवं विकार स्पष्ट भासते हैं व फिर उनके उपचार का क्रम बनता है। बिना स्वाध्याय के हम इनके प्रति प्राय: अनभिज्ञता की अवस्था में रहते हैं और जब तक इनका आभास ही न हो, तो फिर इनके उपचार-परिष्कार का प्रश्न ही नहीं उठता।

जो स्वाध्याय नहीं करते, वे ऐसी ही अज्ञानजन्य खुमारी के साथ जीवन जीने के लिए अभिशप्त होते हैं, और इन दोष-दुर्गुणों को ठीक करने के बजाय, इन्हीं को पुष्ट करने का भरसक प्रयास कर रहे होते हैं, बल्कि इनके पक्ष में ढेरों ऊल-जलूल दलीलें पेश करते हुए अपनी आत्मा के कल्याण तक को दाँव पर लगा रहे होते हैं और पाप व कुकर्मों का बोझा बढ़ा रहे होते हैं।

सूक्ष्मरूप से इस आत्मघाती दुर्घटना से बचने के लिए स्वाध्याय आवश्यक हो जाता है। इसीलिए शास्त्रों ने स्वाध्याय में प्रमाद न करने की बात कही है और यदि नियमित रूप से स्वाध्याय का क्रम चल पड़े तो यह स्वाध्यायी को कई अनुदान दे जाता है।

स्वाध्याय कई तरह के वरदान साधक की झोली में अनायास ही दे जाता है। स्वाध्याय के साथ निश्चित रूप से विषय का ज्ञान बढ़ता है। किसी एक आध्यात्मिक विषय पर यदि कई ग्रंथों का पारायण चलता रहे, तो एक समय के

बाद व्यक्ति उस विषय का पारंगत विद्वान बन जाता है।

स्वाध्याय के साथ बुद्धि तत्त्व सूक्ष्म होता है, प्रज्ञा शक्ति जाग्रत होती है। शास्त्रों में निहित ज्ञान के मर्म का उद्घाटन होता है, जिसके दिव्य प्रकाश से जीवन आलोकित हो उठता है और अज्ञानता व अविद्या के अंधकार का साम्राज्य तिरोहित होने लगता है। योग शास्त्रों में कहा गया है कि स्वाध्याय से योग को साधें और योग से स्वाध्याय का अभ्यास करें। स्वाध्याय की संपत्ति से परमात्मा का साक्षात्कार होता है।

इस सूक्ष्मबुद्धि से न केवल अपने दोष-दुर्गुणों का परिमार्जन होता है, बल्कि दूसरों की मानसिक स्थिति भी स्पष्ट समझ आती है। इसके साथ जहाँ मानव प्रकृति की समझ विकसित होती है तो वहीं प्रकृति के रहस्य भी इसके प्रकाश में अपना आवरण हटाने लगते हैं।

निस्संदेह स्वाध्याय के साथ चरित्र का गठन होता है और सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास होता है। आत्मविश्वास जाग्रत होता है, श्रद्धा के साथ ईश्वरीय आस्था भी प्रगाढ़ होती है और व्यक्ति आध्यात्मिक कक्षा में प्रवेश कर जाता है। ऐसे व्यक्ति का मन सदैव प्रसन्नचित्त व शांत रहता है। जीवन के प्रति आशावादी रुख बना रहता है और वह नित्य जीवन के परम लक्ष्य की ओर गतिशील रहता है।

स्वाध्याय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम इसके महत्त्व को समझें व इसके लिए नियमित रूप से कुछ समय निकालें। साथ ही पुस्तकों के चयन में सावधानी बरतें। हर तरह की पुस्तकों के अध्ययन से स्वाध्याय का उद्देश्य पूरा नहीं होता। फिल्मी उपन्यास, हलके मनोरंजन की कथा-कहानियाँ व्यक्ति के मन को और मलिन एवं भ्रमित करती हैं व स्वाध्याय की दृष्टि से किसी काम की नहीं रहतीं। आज बाजार व इंटरनेट पर तमाम तरह की सेल्फ-हेल्प पुस्तकें उपलब्ध हैं, इनमें भी सोच-समझकर ही इनका चयन करने की आवश्यकता रहती है।

ऐसे लेखकों की पुस्तकों का चयन करें, जिनका जीवन प्रकाशित हो, जिन्होंने जीवन को समग्रता में जिया हो। इसके लिए प्रामाणिक आध्यात्मिक पुस्तकें श्रेष्ठ रहती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, पातंजल योगसूत्र, रामचरितमानस जैसे शाश्वत महत्त्व के ग्रंथों का पारायण सर्वश्रेष्ठ रहता है।

इसी तरह हर युग के महान आध्यात्मिक विचारकों के जीवन चरित्र व शिक्षाओं पर आधारित पुस्तकों का चयन किया जा सकता है। परमपूज्य गुरुदेव का विपुल युगसाहित्य स्वाध्याय के लिए सर्वथा उपयुक्त है। अपनी रुचि व आवश्यकता के अनुरूप इनका चयन किया जा सकता है। यदि आवश्यकता हो तो इनके चयन में किसी अनुभवी वरिष्ठ की सहायता ली जा सकती है।

स्वाध्याय कैसे करें, यह भी महत्त्वपूर्ण है। सबसे श्रेष्ठ समय प्रातः स्नान के बाद ध्यान, पूजा-पाठ के साथ का रहता है। इस दौरान कुछ पन्ने या अंश पढ़े जा सकते हैं। इनको ध्यान की विषय-वस्तु बनाया जा सकता है। एक डायरी में लिखकर इनके संकलन को आगे संदर्भ के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

दिन भर इन पर चिंतन-मनन व निदिध्यासन करते हुए इनके मर्म को हृदयंगम करने का प्रयास किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त दोपहर, सायं व रात्रिकाल में जब भी एकांत में कुछ समय मिले, स्वाध्याय किया सकता है। इसमें छोटी पॉकेट बुक्स

का सहारा लिया जा सकता है, जो युगसाहित्य के रूप में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। आजकल मोबाइल में ही इस तरह की उत्कृष्ट सामग्री रहती है, जिसका सहारा लिया जा सकता है।

स्वाध्याय आत्मा का आहार है, जितना इसका उचित मात्रा में नियमित रूप से सेवन करेंगे, आत्मा उतनी सबल होगी। जीवन की चिंताएँ दूर होंगी, इसकी शंकाओं का समाधान होगा। स्वाध्याय की प्रगाढ़ता के साथ मन में शुभ संकल्पों का उदय होना सुनिश्चित है, जिसके साथ आत्मा की शांति का अनुभव होगा। निस्संदेह स्वाध्याय करना प्राणी का तप है, स्वर्ग का द्वार और मुक्ति का सोपान है। नैष्ठिक साधक स्वाध्याय के बल पर जन्म-मरण के चक्र से छूट जाता है।

स्वाध्याय की इतनी महत्ता देखते हुए, हर साधक का कर्त्तव्य बनता है कि वह इसे जीवन का अभिन्न अंग बनाए, स्वयं स्वाध्याय करे और दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करे। ❑

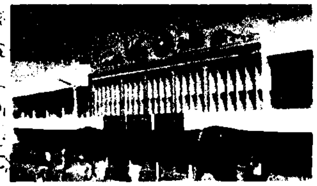
एक व्यक्ति ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात से मिलने पहुँचा और उनसे बोला—''मैं आपको शहर के एक मंत्री के विषय में कुछ बताने आया हूँ।'' सुकरात बोले—''मैं बिलकुल आपकी बात सुनूँगा, पर पहले यह बताओ कि जो तुम बताने वाले हो क्या वह बात पूर्णतया सत्य है ?'' वह व्यक्ति बोला—''यह तो मैं नहीं कह सकता; क्योंकि मैंने इसके विषय में किसी से सुना है। अतः इसकी सत्यता के विषय में मैं पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं हूँ।'' सुकरात पुनः बोले—''अच्छा तो जो बात तुम बताओगे, उसकी सत्यता तुम्हें नहीं पता, पर बात तो कुछ अच्छे ही विषय की होगी।'' वह व्यक्ति बोला—''ऐसा नहीं है, बात तो उसकी बुराइयों से संबंधित है।''

सुकरात बोले—''तो जो बात तुम बताने वाले हो, वो शायद सत्य है और किसी की बुराइयों से संबंधित है। कोई बात नहीं, हो सकता है तुम इसलिए सुनाने आए; क्योंकि वह मेरे कुछ काम की हो।'' वह व्यक्ति बोला—''नहीं, आपके किसी काम की तो शायद नहीं, पर मैं सिर्फ यह बताने आया था कि उस मंत्री का संबंध किसी महिला से है।''

सुकरात बोले—''मित्र! मैं वह जानकर क्या करूँगा ? जो बात न सत्य हो, न अच्छी हो और न किसी उपयोग की हो, उसको बताकर तुम भी नाहक अपने को कष्ट मत दो और मेरा भी समय व्यर्थ मत करो। बेहतर है कि तुम यह समय अपने जीवन के विकास में लगाओ।''

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार-170

इंटरनेट के दुष्प्रभावों पर शोध



इक्कीसवीं सदी का यह तीसरा दशक चल रहा है। विगत कुछ दशकों में मनुष्य जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले कारणों पर यदि दृष्टि डाली जाए तो तकनीकी का विकास एक बड़े कारण के रूप में निकलकर सामने आता है, जिसने व्यक्ति और समाज के जीवन को अप्रत्याशित रूप में बदलने का कार्य किया है।

इंटरनेट जैसी तकनीक ने मनुष्य जीवन को आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वैज्ञानिक युग में तकनीकी विकास के अपने लाभ हैं और समय की आवश्यकता एवं माँग की दृष्टि से यह उचित भी है, परंतु इस तकनीकी विकास के कुछ घातक एवं भयावह नकारात्मक पहलू भी उभरकर सामने आए हैं।

इंटरनेट ने व्यक्ति को अपनी वास्तविक दुनिया और जीवनमूल्यों से अलग कर कंप्यूटर, लैपटॉप, टैबलेट, मोबाइल आदि के माध्यम से आभासी दुनिया में पहुँचा दिया है। एक ऐसी वर्चुअल (आभासी) दुनिया, जिसकी गिरफ्त में व्यक्ति अपनी वास्तविक दुनिया से कोसों दूर हो चला है।

सोशल मीडिया फेसबुक, यूट्यूब व अन्य चैटिंग एप ने तो आज की पीढ़ी के सामने एक अलग ही दुनिया खड़ी कर दी है, जिसमें एक बार व्यक्ति पहुँच जाए तो थोड़े ही समय में उसका आदी हो जाता है और फिर वह किसी काम का नहीं रह जाता।

इस दिशा में साइबर सायकोलॉजी के अध्ययनों के नतीजे चौंकाने वाले हैं। बच्चे एवं युवा इंटरनेट की दुनिया से ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं। वर्चुअल दुनिया में रहने की लत उनके जीवन पर बुरी तरह से हावी हो रही है। सोशल मीडिया का व्यसन अब एक सामान्य घटना बन गया है। ऐसे में समय रहते इस तकनीकी संस्कृति के दुष्प्रभावों से बचाना व इसके सार्थक प्रयोग हेतु सजगता उत्पन्न करना अत्यंत आवश्यक हो गया है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत वर्ष—2017 में सोशल मीडिया के प्रभावों को लेकर एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन संपन्न किया गया है। यह अध्ययन शोधार्थी पूर्वा शर्मा द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या के विशेष संरक्षण एवं डॉ० संतोष विश्वकर्मा के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध का विषय है—**'अ स्टडी ऑफ दि इम्पेक्ट ऑफ सोशल मीडिया यूज अपोन स्लिप पैटर्न, इमोशनल मैच्योरिटी एंड एकेडमिक परफॉर्मेंस अमंग कॉलेज स्टूडेन्ट्स।'**

शोधार्थी द्वारा अपने इस शोधकार्य के प्रयोग हेतु उत्तराखंड राज्य के हरिद्वार व देहरादून जिले के अलग-अलग कॉलेज एवं विश्वविद्यालयों से कोटा प्रतिचयन विधि द्वारा कुल 510 विद्यार्थियों का चयन किया गया। इन चयनितों में महिला एवं पुरुष वर्ग का अनुपात समान रखा गया एवं सभी की आयु 18 से 25 वर्ष के मध्य थी।

ये विद्यार्थी किसी एक विषय के न होकर विज्ञान, कला, वाणिज्य प्रबंधन आदि विभिन्न क्षेत्र के थे। चयन के उपरांत 255 पुरुष वर्ग एवं 255 महिला वर्ग के दो समूह तैयार किए गए व फिर इन दोनों समूहों में 85 की संख्या में तीन उपसमूह A, B व C वर्गीकृत किए गए।

प्रथम उपसमूह में 4 या उससे अधिक घंटे प्रतिदिन सोशल मीडिया उपयोग करने वालों को सम्मिलित किया गया। दूसरे में 3 घंटे तक प्रतिदिन सोशल मीडिया प्रयोग करने वाले तथा तीसरे उपसमूह में प्रतिदिन एक घंटे से कम अवधि तक सोशल मीडिया का प्रयोग करने वाले विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया।

अध्ययन हेतु जिन शोध उपकरणों का प्रयोग किया गया, वे हैं—चार्ल्स एम मॉरेन (1985) द्वारा निर्मित 'इन्सोम्निया सिविअरिटि इन्डेक्स स्केल', डॉ० यशवीर सिंह व डॉ० महेश भार्गव (1999) द्वारा निर्मित 'इमोशनल मैच्योरिटी स्केल', शैक्षणिक योग्यता हेतु परीक्षा परिणाम का प्रतिशत एवं डॉ० किमब्रले यंग (1998) द्वारा निर्मित 'इंटरनेट एडिक्शन स्केल'।

उक्त उपकरणों के माध्यम से शोध के मानकों एवं अनुशासनों का पालन करते हुए शोधार्थी द्वारा महत्त्वपूर्ण आँकड़ों एवं तथ्यों का संकलन किया गया तथा इन आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर जो शोध के परिणाम प्राप्त हुए, वे आज के इंटरनेट क्रांति के युग में गंभीर चिंतन और चिंता को उत्पन्न करने वाले हैं।

शोधार्थी ने इन शोध परिणामों की विवेचना में निष्कर्ष रूप में यह पाया कि सोशल मीडिया के व्यसन का शिकार होने वाले विद्यार्थियों के निद्रा चक्र, भावनात्मक परिपक्वता और शैक्षणिक प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जो युवा प्रतिदिन सोशल मीडिया पर ज्यादा समय व्यतीत करते हैं, उनमें अनिद्रा की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

अच्छी नींद का सामान्य स्वास्थ्य से गहरा संबंध होता है। अत: नींद की अवधि में कमी अथवा व्यवधान आने से संपूर्ण स्वास्थ्य असंतुलित हो जाता है और धीरे-धीरे अनेक समस्याएँ प्रकट होने लगती हैं। अध्ययन के परिणामों में यह भी पाया गया है कि सोशल मीडिया की आदत में महिला वर्ग की अपेक्षा पुरुष वर्ग में नींद की गुणवत्ता ज्यादा प्रभावित होती है।

शोध के द्वितीय मापदंड में भावनात्मक परिपक्वता के स्तर का सर्वेक्षण किया है। इस संदर्भ में यह देखा गया कि सोशल मीडिया का एडिक्शन युवाओं की भावनात्मक योग्यता पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

क्रोध, चिड़चिड़ापन, आवेश, आलस्य, निराशा, आत्महीनता, आत्मविश्वास में कमी जैसी अनेक मनोव्याधियों के उत्पन्न होने का प्रमुख कारण भावनात्मक परिपक्वता के स्तर में कमी ही है। अकेलापन महसूस करना, अवसाद, तनाव जैसी गंभीर समस्याएँ सोशल मीडिया के व्यसनी लोगों में सामान्य बात है। महिला वर्ग की भावनात्मक योग्यता पुरुष वर्ग की तुलना में ज्यादा प्रभावित होती है।

विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धियों पर भी सोशल मीडिया की आदत का अत्यंत नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। शैक्षणिक गतिविधियों में लगने वाला कीमती समय जब सोशल साइट्स पर व्यतीत होने लगता है तो निश्चित रूप से विद्यार्थी के परीक्षा परिणाम पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसमें भी महिला वर्ग की तुलना में पुरुष वर्ग की शैक्षणिक योग्यता ज्यादा प्रभावित होती है।

विद्यार्थियों में यह देखा गया है कि पढ़ाई की आवश्यक गतिविधियों; जैसे—कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली पाठ्य सामग्री, अध्यापकों से संवाद, पढ़ाई को लेकर सहपाठियों से पारस्परिक चर्चा जैसी अनेक महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक उपलब्धियों को बढ़ाने वाली गतिविधियों में न्यूनता आ जाती है। फलस्वरूप इसका सीधा दुष्परिणाम विद्यार्थी की शैक्षणिक उपलब्धि पर दिखाई देता है।

इंटरनेट का व्यसन विद्यार्थी जीवन को बुरी तरह प्रभावित करता है। यह दैनिक कार्य, अध्ययन, संबंध, रुचि, स्वास्थ्य, व्यवहार अर्थात संपूर्ण व्यक्तित्व एवं जीवन पर नकारात्मक प्रभाव डालता है।

यह सच है कि इंटरनेट के फायदे हैं और यह आज के समय की आवश्यकता भी है, परंतु इसके दुष्प्रभाव और युवाओं में लगातार बढ़ती इसकी आदतों ने गंभीर समस्याएँ उत्पन्न कर दी हैं।

अभिभावक, अध्यापक, परामर्शदाता, चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक सभी के समक्ष विद्यार्थियों में पनपता इंटरनेट व सोशल मीडिया व्यसन एक गंभीर मुद्दा बन गया है। उनके शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के साथ ही पूरे जीवन पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

अत: इस दिशा में सभी स्तर पर सम्मिलित रूप से ऐसे सार्थक उपाय किए जाने आवश्यक हैं जिनसे विद्यार्थी जीवन को सोशल मीडिया के दुष्प्रभावों से बचाया जा सके।

अपने इस शोध अध्ययन के परिणामों के आधार पर शोधार्थी का यह मत है कि इंटरनेट क्रांति के इस युग में सोशल मीडिया के लाभ एवं आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता, परंतु इसके उपयोग के लिए कुछ अनिवार्य पहलुओं को अपनाया जाना आवश्यक है, ताकि युवा पीढ़ी को इसके दुष्प्रभावों से बचाया जा सके।

विद्यार्थियों के लिए उपयोगी, संतुलित, प्रामाणिक और सामाजिक स्वीकार्यता वाली सोशल साइट्स को ही उपलब्ध कराना चाहिए। सोशल मीडिया का प्रयोग सार्थक एवं निर्धारित समय के लिए ही किया जाए, ऐसी सजगता और जिम्मेदारी को उत्पन्न करना भी आवश्यक है। विद्यार्थियों को केवल वही एप उपयोग करना चाहिए, जो उनकी पढ़ाई एवं भविष्य के लिए महत्त्वपूर्ण है।

इंटरनेट सर्फिंग का एक सुनिश्चित समय निर्धारित कर लेना चाहिए, ताकि अनावश्यक समय की बरबादी न हो एवं इसकी लत भी न लगे। दैनिक गतिविधियों, आवश्यक कार्यों एवं पढ़ाई के समय सोशल मीडिया से दूरी बनाए रखना— इनके व्यसन से बचने-बचाने का बेहतर विकल्प है। यह उपाय विद्यार्थी ही नहीं अपितु सभी के लिए समान रूप से कारगर एवं प्रभावी है।

विद्यार्थियों में अध्ययन की कुशलता, नवाचार की गतिविधियों से जुड़ना और शिक्षा एवं रोजगार के विकल्पों की दृष्टि से इंटरनेट एवं सोशल मीडिया की उपयोगिता एवं लाभ हैं, अत: मोबाइल, कंप्यूटर, टैब आदि की आवश्यकता एवं इंटरनेट के महत्त्व को उनके लिए कम करके नहीं आँका जा सकता है, परंतु इसकी सार्थक एवं संतुलित उपयोग की रीति-नीति बनाकर ही इसके दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है।

आत्मविश्वास, आत्मज्ञान और आत्मसंयम सिर्फ यही तीन जीवन को बल और संबल प्रदान करते हैं।

इंटरनेट पर जानकारी, सूचनाओं, मनोरंजन व अन्य सामग्रियों का भंडार है, ऐसे में स्व-अनुशासन, सजगता और उपयोग करने की नियमावली बनाकर उसका कठोरता से पालन करके सोशल मीडिया के दुष्प्रभावों से बचा जा सकता है।

यह अध्ययन युवाओं को वर्चुअल दुनिया के प्रति सजग करता है तथा सोशल मीडिया की वास्तविकता से एवं उसके सकारात्मक व नकारात्मक पहलुओं के संदर्भ में पर्याप्त तथ्यात्मक जानकारी उपलब्ध कराता है। विद्यार्थियों में बढ़ रही इंटरनेट सर्फिंग तथा सोशल मीडिया की लत को समझने व समाधान की दिशा में सार्थक प्रयास करने की दृष्टि से यह शोधकार्य महत्त्वपूर्ण जानकारी एवं उपायों को प्रस्तुत करने वाला एक उपयोगी अध्ययन है। ❑

विचार क्रांति का स्वरूप



परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। मनुष्य, समाज, संस्कृति और सभ्यता को इस परिवर्तन प्रक्रिया से होकर गुजरना पड़ता है। समय-समय पर कितनी ही नवीन परंपराओं, प्रचलनों एवं प्रथाओं का देश और समाज की आवश्यकता के अनुरूप प्रादुर्भाव होता रहता है। एक समय की उपयोगी मान्यताएँ एवं परंपराएँ दूसरे समय में अनुपयोगी हो जाती हैं। उनमें परिवर्तन व सुधार की आवश्यकता पड़ती है।

समाज-व्यवस्था, शासन-तंत्र आदि में भी समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। एक व्यवस्था-एक नियम-एक कानून हर काल में उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकते। उनमें बदली परिस्थितियों की माँगों के अनुरूप हेर-फेर करते रहने से ही समाज की सुव्यवस्था कायम रह सकती है। समाज के सुनियोजित संचालन और विकास की दृष्टि से परिवर्तन आवश्यक और उपयोगी है।

कितनी ही प्रथाएँ, मान्यताएँ एवं व्यवस्थाएँ एक निश्चित अवधि के बाद जरा-जीर्ण हो जाती हैं तथा ऐसी रूढ़ियों का रूप ग्रहण कर लेती हैं, जो व्यक्ति और समाज के लिए हर दृष्टि से हानिकारक हैं, पर पुरातन के मोह अथवा स्वार्थों पर आघात पहुँचने के भय से मनुष्य उन्हें छोड़ना नहीं चाहता, उनसे चिपका रहता है।

फलतः एक ऐसा अवरोध पैदा होता है, जो विकास-प्रक्रिया का मार्ग अवरुद्ध करता है। अराजकता, अव्यवस्था तथा अवांछनीयता को ऐसी ही परिस्थितियों में आश्रय मिलता है। उनमें सुधार एवं परिवर्तन के लिए जब व्यक्तिगत विरोधात्मक प्रयत्न कारगर सिद्ध नहीं होते, तो व्यापक परिवर्तन करने वाली क्रांतियों का जन्म होता है, जो आँधी-तूफान की भाँति आती हैं तथा अपने प्रवाह में उस कचरे को बहा ले जाती हैं, जिनके कारण समाज में अव्यवस्था फैल रही थी।

प्रयास संघर्षात्मक होते हुए भी क्रांति सृजन की एक ऐसी प्रक्रिया है, जो उपयोगी मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना एवं सुनियोजन के लिए आवश्यक है। जनमानस में संव्याप्त भ्रांतियों में से एक यह है कि क्रांति परिवर्तन की हिंसात्मक पद्धति है तथा क्रांतियों को जन्म देने में आर्थिक विषमता ही प्रधान कारण होती है।

वस्तुतः कार्ल मार्क्स की साम्यवादी विचारधारा के बढ़ते हुए प्रभाव ने उपरोक्त मान्यता को जन्म दिया। मानव जीवन के अनिवार्य पहलू—अर्थ और संबंधित तंत्र के व्याप्त होने के कारण मार्क्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि समाज में मूलभूत प्रेरक शक्ति अर्थ ही है।

आर्थिक असंतुलन ही समाज की विभिन्न समस्याओं को जन्म देता है। यह असंतुलन जब चरम सीमा पर जा पहुँचता है तो क्रांतियों का सूत्रपात होता है। मार्क्स के अनुसार विश्व की अधिकांश क्रांतियाँ आर्थिक विषमता के कारण हुई हैं। यह मान्यता एकांगी और अपूर्ण है। वस्तुस्थिति की गहराई में पहुँचने के लिए इतिहास का पर्यवेक्षण-अध्ययन करना होगा।

प्रख्यात फ्रांसीसी क्रांति का इतिहास यह बताता है कि उन दिनों फ्रांस में निरंकुश शासकों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। जनता अत्याचार, अन्याय की चक्की में पिस रही थी। नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं अधिकार लगभग समाप्त हो गए थे।

फ्रांसीसी क्रांति में समानता का विचार अर्थ के आधार पर नहीं, बुद्धि के आधार पर मानवतावादी सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में किया गया।

मौलिक प्रेरणा यह थी कि मनुष्य जब जन्म लेता है तो स्वतंत्रता तथा समानता एक समान होते हैं। इस स्वतंत्रता तथा प्राकृतिक समानता को जबरन प्रतिबंधित नहीं किया जाना चाहिए। इस विचारणा ने फ्रांस की क्रांति का सूत्रपात किया, जिसके सूत्रधार बने वॉल्टेयर और रूसो।

इंग्लैंड की प्यूरिटन क्रांति पर प्रभाव बाइबिल में प्रतिपादित समानता के विचारों का था, जिसे राजनीतिक समर्थन भी मिल गया। उन दिनों ब्रिटिश पार्लियामेंट लोकतांत्रिक नहीं थी, अधिकार भी सीमित थे। साम्राज्यवादी शासन का देश पर प्रभुत्व था। ऐसे में असमानता की खाई पाटने की तीव्र आवाज उठी। धार्मिक एवं राजनीतिक दोनों ही मंचों से एक साथ साम्राज्यवाद के विरोध में वैचारिक वातावरण तैयार हुआ, जिसने क्रांति का सूत्रपात किया।

दास प्रथा के विरुद्ध अमेरिका में जिस क्रांति का जन्म हुआ, वह मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए था। काले, गोरों के बीच भेदभाव की प्रवृत्ति चरम सीमा पर थी। वर्णभेद के पनपते विष-वृक्ष ने समाज की उन जड़ों को खोखला बनाना आरंभ कर दिया था, जिन पर मनुष्यता अवलंबित है। काले लोगों पर गोरों का अत्याचार-अनाचार बढ़ता ही जा रहा था। उत्पीड़ित मानवता के व्यथित स्वर ने विद्रोह की आवाज फूँकी। फलस्वरूप सर्वत्र अमानवीय दास प्रथा के विरुद्ध आवाज उठी, जो क्रमशः तीव्र होती गई और दास प्रथा का अंत हुआ।

इतिहास की ये महत्त्वपूर्ण क्रांतियाँ अर्थ से अभिप्रेरित नहीं थीं। इनका लक्ष्य था—व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, राजनीतिक लोकतंत्र तथा मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना। रूस की आधुनिक क्रांति को मार्क्स के वर्ग युद्ध के दर्शनशास्त्र का आदर्श स्वरूप माना जाता है, जबकि सत्य दूसरा ही है। रूसी क्रांति का जन्म जार के अत्याचारी, भ्रष्ट शासन के विरोध में हुआ था, न कि वह वर्ग संघर्ष अथवा आर्थिक असमानता का प्रतिफल था। अस्तु आर्थिक विषमता को एकमात्र सभी समस्याओं का कारण मानना तथा क्रांतियों का सूत्रधार करना विवेकसम्मत नहीं है।

क्रांति का स्वरूप हिंसात्मक भी नहीं है; जैसी कि मान्यता अधिकांश व्यक्तियों के मन में बनी हुई है। क्रांति का अर्थ वैचारिक परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया से है, जिसमें जनचेतना अनौचित्य का विरोध करने, छोड़ने तथा औचित्य को अपनाने के लिए विवश हो जाए। जिन क्रांतियो का आरंभ अहिंसात्मक तरीके से हुआ, पर आगे चलकर वे हिंसात्मक रूप में बदल गईं, वे समाज में विशेष परिवर्तन कर सकने में समर्थ न हो सकीं। प्रमाण सामने है—विश्व की भौतिक एवं सामाजिक क्रांतियों का इतिहास।

विश्व की अधिकांश क्रांतियाँ जिन आदर्शों से प्रेरित होकर शुरू हुईं, वे आगे चलकर गौण हो गए और एकमात्र सत्ता का परिवर्तन ही प्रमुख लक्ष्य रह गया। सत्ता के संकुचित लक्ष्य तक केंद्रित हो जाने से क्रांति का अभीष्ट लक्ष्य कभी पूरा न हो सका। निरंकुशता व शाही शासन से तात्कालिक राहत भले ही मिल गई हो, पर क्रांति का समग्र उद्देश्य अपूर्ण ही बना रहा।

क्रांति का अर्थ है—व्यक्ति के अंतरंग और बहिरंग का आमूलचूल परिवर्तन। एक ऐसा परिवर्तन, जो मनुष्य समुदाय को परस्पर एकदूसरे के निकट लाता तथा बाँधता हो। समाज की रूढ़िग्रस्त परंपराओं और कुरीतियों को समाप्त करता तथा स्वस्थ परंपराओं के प्रचलन के लिए साहस दिखाता हो। निस्संदेह क्रांति का स्वस्थ स्वरूप और महान लक्ष्य ही होना चाहिए।

स्पष्ट है कि इस महान लक्ष्य की पूर्ति हिंसात्मक तरीके से नहीं, विचार-क्रांति के अहिंसात्मक, आध्यात्मिक प्रयोग उपचारों के द्वारा ही संभव है। बुद्ध का धर्मचक्र-प्रवर्तन क्रांति का आदर्श और समग्र स्वरूप था। गांधी का स्वराज्य आंदोलन भी इन्हीं आदर्शों से अभिप्रेरित था।

मात्र बाह्य परिवर्तनों से समाज की अनेकानेक समस्याओं का समाधान होना संभव रहा होता तो कभी का हो गया होता। विश्व में अनेकों हिंसात्मक क्रांतियाँ हुई हैं। सत्ता में परिवर्तन हुए हैं, पर मानव जाति की मूल समस्या अपने स्थान पर यथावत् बनी हुई है। फ्रान्स, इंग्लैंड, अमेरिका, रोम तथा रूस की प्रख्यात क्रांतियों के बावजूद यह नहीं कहा जा सकता है कि इन देशों में मानवतावादी व्यवस्था स्थापित हो गई है, असमानता की खाई पट गई है और आपसी सौहार्द की मात्रा बढ़ी है।

यह तथ्य भली भाँति हृदयंगम करना होगा कि परिवर्तन का केंद्रबिंदु मनुष्य है। बाह्य परिस्थितियाँ तो आंतरिक परिवर्तन के अनुरूप बनती-बदलती रहती हैं। क्रांति की सफलता मनुष्य के आंतरिक परिवर्तन पर अवलंबित है। समग्र क्रांति भी मनुष्य के भीतर ही संभव है। समाज को तो यथास्थिति ही प्रिय है, उसकी स्वयं की व्यक्तियों से अलग कोई सत्ता नहीं है।

बाह्य परिस्थितियों में परिवर्तन की बात सोचते रहने तथा मनुष्य के आंतरिक परिवर्तन की उपेक्षा करते रहने से कुछ स्थायी हल नहीं निकल सकता। हमें स्थायी परिवर्तन के लिए एक ऐसी आध्यात्मिक क्रांति का श्रीगणेश करना होगा, जो अहिंसात्मक हो, वैचारिक हो तथा जिसका लक्ष्य संपूर्ण विश्व हो, न कि सीमित व्यक्तियों अथवा एक समाज विशेष का परिवर्तन मात्र।

कहना होगा कि आध्यात्मिक क्रांति द्वारा ही व्यक्ति का बाह्यांतर परिवर्तन तथा समाज का पुनर्निर्माण संभव है। इसके लिए ऐसे सशक्त वातावरण का सृजन करना होगा कि मनुष्य, परिवेश की उत्कृष्टता में ढलता-बनता चला जाए। संगठन शक्ति की महत्ता, उपयोगिता असंदिग्ध है, बड़े परिवर्तन संगठन के बिना नहीं हो सकते। व्यक्ति अकेला कितना भी समर्थ क्यों न हो, एकाकी कुछ नहीं कर सकता।

संसार में जब भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, संगठित प्रयासों के बलबूते हुए हैं। आध्यात्मिक क्रांति की चिनगारी भी उत्कृष्ट व्यक्तियों की आहुति पाकर प्रज्वलित होगी, दावानल का स्वरूप ग्रहण करेगी। सर्वत्र संव्याप्त, दुष्प्रवृत्तियों, अवांछनीयताओं, कुरीतियों, मूढ़मान्यताओं, अंधविश्वासों का कूड़ा-करकट उस दावानल में ही जल सकेगा, पर उस अग्नि को प्रदीप्त करने के लिए सर्वप्रथम ऐसे ही भावनाशीलों को आगे आना होगा, जो स्वयं के व्यक्तित्व को सोने की भाँति तपा सकें और कुंदन बनकर समाज को आलोकित कर सकें। ❑

आस्थाओं का उन्नयन, चिंतन का परिष्कार, सत्प्रवृत्तियों का अवगाहन, ये दीखते तो तीन हैं, पर वस्तुतः एक ही तथ्य के तीन रूप हैं। सत्कर्म और सद्ज्ञान वस्तुतः सद्भावों का ही उत्पादन है। यही है जाग्रत आत्माओं के माध्यम से प्रज्ञावतार द्वारा कराया जाने वाला महाप्रयास। हर जाग्रत आत्मा को अगले दिनों अपनी समस्त तत्परता और तन्मयता जनमानस के परिष्कार पर केंद्रीभूत करनी होगी।

कैसा होता है सात्त्विक तप



(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की सोलहवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के सोलहवें श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इसमें श्रीभगवान कहते हैं कि मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मननशीलता, मन का निग्रह और भावशुद्धि—ये मन संबंधी या मानसिक तप कहलाते हैं। मानसिक तप का प्रथम लक्षण मन की प्रसन्नता से है। कई बार लोग स्वयं को कष्ट देने को, स्वयं को अनावश्यक तकलीफों से गुजारने को तप समझने लगते हैं। महर्षि पातंजलि ने योगसूत्र में यह स्पष्ट भी किया है कि तप, चित्त की प्रसन्नता को बाधित न करता हुआ होना चाहिए। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण यहाँ पहला सूत्र ही ये कहते हैं कि मन की प्रसन्नता, चित्त की प्रसन्नता मानसिक तप का पहला लक्षण है। मन को दुर्भावनाओं से मुक्त रखने पर ही मन को प्रसन्नता प्राप्त हो पाती है। जिसके मन में असंतोष, अतृप्ति, अभाव, अनर्गल भावनाएँ उद्विग्नता पैदा करते रहते हैं—वो भला तप कैसे कर सकता है ? इसीलिए भगवान कृष्ण मन की प्रसन्नता को मानसिक तप का पहला लक्षण बताते हैं। शास्त्रों में कहा भी गया है कि जो शरीर के लिए हितकारी एवं नियमित भोजन को ग्रहण करने वाला है, सदा एकांत में रहने के स्वभाव वाला है, किसी के पूछने पर कभी कोई हित की बात बोल देता है, कम सोता एवं कम घूमता है, इस प्रकार का साधक बहुत शीघ्र चित्त की प्रसन्नता को प्राप्त कर लेता है।

इसके उपरांत भगवान कृष्ण सौम्यता को, ऐसे मनोभाव को जो क्रूरता, द्वेष, कुटिलता आदि दुर्गुणों से मुक्त हो—उसे मानसिक तप का दूसरा लक्षण या गुण बताते हैं। ऐसे व्यक्ति का मन फिर एक आंतरिक ठहराव को, मौन को, मननशीलता को प्राप्त कर जाता है। इसके बाद वे आत्मनिग्रह अर्थात मन पर संपूर्ण स्वामित्व एवं भावशुद्धि को मानसिक तप के अन्य लक्षणों में गिनाते हैं।]

इसके बाद भगवान कृष्ण अपने अगले सूत्र को कहते हैं कि

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥

—*17/17*

शब्दविग्रह—श्रद्धया, परया, तप्तम्, तपः, तत्, त्रिविधम्, नरैः, अफलाकाङ्क्षिभिः, युक्तैः, सात्त्विकम्, परिचक्षते।

शब्दार्थ—फल को न चाहने वाले (**अफलाकाङ्क्षिभिः**), योगी (**युक्तैः**), पुरुषों

द्वारा (**नरैः**), परम (**परया**), श्रद्धा से (**श्रद्धया**), किए हुए (**तप्तम्**), उस (पूर्वोक्त) (**तत्**), तीन प्रकार के (**त्रिविधम्**), तप को (**तपः**), सात्त्विक (**सात्त्विकम्**), कहते हैं (**परिचक्षते**)।

अर्थात—परम श्रद्धा से युक्त फलेच्छारहित मनुष्यों के द्वारा जो तीन प्रकार का तप किया जाता है, उसको सात्त्विक तप कहते हैं। भगवान कहते हैं कि '**श्रद्धया परया तप्तम्**' अर्थात परम श्रद्धा से युक्त, जिसका तात्पर्य एक अटूट विश्वास वाले भाव से है। इस संसार में चाहे लौकिक उपलब्धियों की प्राप्ति हो अथवा अलौकिक सिद्धियों को हस्तगत करना, बिना अटूट अविचल विश्वास के, बिना श्रद्धा के कुछ भी प्राप्त कर पाना संभव नहीं हो पाता है।

श्रद्धा के अंदर ही समस्त सिद्धियों को उपलब्ध करा पाने की सामर्थ्य होती है। इसी अध्याय के प्रारंभ में भी भगवान ने कहा था कि '**यो यच्छ्रद्धः स एव सः**' जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही बन जाता है। श्रद्धा जीवन में हो तो सारे चमत्कार घटित होते हैं। श्रद्धा होती है तो प्रह्लाद की पुकार पर भगवान खंभा फाड़कर बाहर आने पर विवश होते हैं, श्रद्धा होती है तो ग्वाल-बालों की लाठी गोवर्धन को उठा पाती है, श्रद्धा होती है तो रीछ-वानरों के उछाले हुए पत्थर पानी पर पुल बन जाते हैं, श्रद्धा होती है तो मीरा के बुलाने पर भगवान दौड़े चले आते हैं और श्रद्धा होती है तो एकलव्य के लिए मिट्टी की मूर्ति गुरु बन जाती है।

सत्य यही है कि संत के संतत्व का आधार श्रद्धा है, देवता के देवत्व का आधार श्रद्धा है और भगवान की भगवत्ता का आधार भी श्रद्धा ही है। श्रद्धा होती है तो मिट्टी गुरु बन जाती है, पत्थर भगवान बन जाते हैं और प्रतिमा देवी बन जाती है। बिना श्रद्धा के साक्षात् भगवान भी दिखाई नहीं पड़ते। इसीलिए भगवान कृष्ण कहते हैं कि ऐसी अटल, अविचलित श्रद्धा के साथ, विघ्न-बाधाओं की परवाह न करते हुए आदरपूर्वक तप करना सात्त्विक तप का प्रथम लक्षण है। यही कारण है कि वे परम श्रद्धा से युक्त भाव को इस तप की श्रेणी में सबसे पहले गिनते हैं।

इसके बाद वे निष्कामता के भाव को भी सात्त्विक तप में सम्मिलित करते हैं। श्रद्धा से युक्त व्यक्ति हो एवं उसमें निष्कामता का भी भाव हो तो यह स्वतः ही सात्त्विक हो जाता है।

श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे मनुष्यों द्वारा जो श्रद्धाभाव से युक्त हों, फल की आकांक्षा से रहित हों, उनके द्वारा जो त्रिविध तप अर्थात शारीरिक, वाचिक एवं मानसिक तप किया जाता है, वही तप सात्त्विक होता है।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि भगवान ने मात्र सात्त्विक तप में ही त्रिविध शब्द या भाव को प्रयुक्त किया है अन्यत्र नहीं। इसका अभिप्राय यह है कि शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक—ये तीनों तप समग्र रूप से केवल सात्त्विक भाव से ही किए जा सकते हैं, राजसिक एवं तामसिक भावों से नहीं।

वैसे भी श्रीमद्भगवद्गीता का उद्देश्य ही जीवन मात्र को आत्मकल्याण के लिए प्रेरित करना है और वह कार्य सात्त्विक तप से ही संभव है, अन्य माध्यमों से नहीं।

गीता के ही तेरहवें अध्याय में ज्ञान हेतु जिन बीस साधनों को प्रयोग करने को कहा गया है, उनमें भी शारीरिक तप के लक्षणों में से शुचिता, आर्जव और अहिंसा को, मानसिक तप में से मौन और आत्मनिग्रह को लिया गया है। ऐसा ही सोलहवें अध्याय में दैवी संपत्ति के लक्षणों की गणना करते समय घटित हुआ है।

यहाँ ये कहने के पीछे का उद्देश्य यह है कि ज्ञान के जिन भी साधनों से तत्त्वबोध हो जाए वे

सात्त्विक ही होते हैं। अतः मात्र सात्त्विक तप ही त्रिविध हो सकता है।

मनुष्य के मन में स्फुरणा और संकल्प, दोनों ही जन्म लेते हैं। स्फुरणा क्षणिक होती है और जन्म लेती एवं मिटती रहती है, परंतु जो स्फुरणा स्थायी हो एवं उद्देश्य के प्रति समर्पित हो जाए वह संकल्प का रूप ले लेती है।

वह संकल्प यदि राग व द्वेष से मुक्त हो तो वह सात्त्विक भाव से युक्त हो जाता है। तो वह मनुष्य को मुक्ति की ओर ले जाता है। सात्त्विक तप में कुछ इसी तरह के सात्त्विक संकल्प की आवश्यकता होती है। इसीलिए साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह निरंतर सात्त्विक गुणों में बुद्धि का प्रयत्न करे।

ऐसा करने के लिए वह सदा सद्ग्रंथों के अध्ययन का प्रयत्न करे। आहार सात्त्विक ले, अध्ययन सात्त्विक करे, सत्पुरुषों का सत्संग करे, तीर्थस्थलों का या शुभ स्थानों का भ्रमण करे, शुभ मुहूर्त, प्रातःकाल में सात्त्विक दिनचर्या का पालन करे, शास्त्रविहित कर्मों को ही करे, ताकि सात्त्विक गुणों का अभिवर्द्धन होता चले। इसीलिए श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च।
ध्यानं मंत्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः॥

—11/13/4

अर्थात शास्त्र, जल, प्रजा (संग), स्थान, समय, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र और संस्कार ये दसों यदि सात्त्विक हों तो सतोगुण की, राजसी हों तो रजोगुण की और तामसिक हों तो तमोगुण की वृद्धि करते हैं। इसीलिए भगवान इस श्लोक में कहते हैं कि श्रद्धायुक्त, निष्काम तप ही सात्त्विक तप है।

(क्रमशः)

गिरीश घोष स्वामी रामकृष्ण के भक्त थे। वे नाटक लिखते व अभिनय किया करते थे। एक दिन वे माँ शारदा से मिलने जयरामवाटी पहुँचे और उनके चरणों में बैठकर बोले—"माँ! मैं अब तक नाटक और कविताएँ लिखने तथा थियेटरों में अभिनय करने में समय गँवाता रहा हूँ। अब संन्यास लेकर भगवद्भक्ति करना चाहता हूँ।" माँ मुस्कराकर बोलीं—"गिरीश! तुम्हारे नाटकों से असंख्य लोग प्रेरणा लेते हैं। तुम लोकोपकार के कार्य में लगे हुए हो। इससे बढ़कर भला कौन-सा ईश्वर का भजन हो सकता है? मनुष्य के प्रत्येक सुकर्म के साथ ईश्वर का भजन स्वयमेव हो जाता है।" यह सुनकर गिरीश घोष कृतकृत्य हो उठे।

हिमालय की अबूझ पहेली-हिममानव येति



येति हिमालय का एक रहस्यमय प्राणी है। भारत, नेपाल, भूटान, तिब्बत, मंगोलिया, चीन के हिमालयी क्षेत्रों में येति की चर्चा विभिन्न नामों से सदियों से होती रही है। इसको देखे जाने के कई दावे किए जाते रहे हैं। सबका मानना है कि येति घने जंगलों, ऊँचे पहाड़ों व बरफीले क्षेत्रों में रहता है।

यह सामान्य इनसान से लंबा, बालों से भरा शरीर, भालू और बंदर जैसे रूपवाला है। येति इन हिमालयी क्षेत्रों की लोक-कथाओं में शामिल है, यहाँ के इतिहास और पौराणिक कथाओं का हिस्सा है। लोक-कथाओं के बाहर निकलकर अब तो यह पश्चिमी जगत् में चर्चा का विषय है, लेकिन प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में अभी भी येति एक अबूझ पहेली बना हुआ है।

येति के आकार को लेकर भिन्न-भिन्न मत व कहानियाँ हैं, लेकिन वास्तव में यह कैसा है, किसी को पता नहीं। लद्दाख में कुछ बौद्ध मठों में हिममानव येति को देखने के दावे किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त नेपाल और तिब्बत में भी इसको देखने का दावा किया जा चुका है।

जिन लोगों ने येति को देखा है, उनका मानना है कि इसका पूरा शरीर बालों से भरा है, वह सामान्य मानव से ऊँचा है, शक्ल भालू और बंदर जैसी दिखती है।

इसका भार 200 किलो के लगभग कहा जाता है। इसके शरीर से अजीब-सी गंध आती है और यह अजीब-सा चीखता है। प्रचलित मान्यताओं के अनुसार यह हिमालय की गुफाओं और कंदराओं में रहता है।

नेपाल और भूटान में लोकमान्यता है कि यह दिन को सोता है व रात को शिकार करता है। विभिन्न क्षेत्रों में येति को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। तिब्बत में इसे मेह-तेह अर्थात मानव-भालू, ड्जु-तेह अर्थात हिमालय में रहने वाला भूरा मवेशी-भालू, मिगोई या मी-गो अर्थात जंगली मानव कहा जाता है। नेपाल में इसे बनमंचे, वनमानुष, कांगचेंजुन्गा राचीस, कंचनजंगा का दानव आदि नामों से जाना जाता है।

पश्चिमी जगत् में सबसे पहले येति की चर्चा सन् 1832 में जेम्स प्रिन्सेंप के जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल में पर्वतारोही बी०एच० हॉजसन ने की थी, जब उन्होंने येति को हिमालय के उत्तरी नेपाल में देखने के अनुभव को लिखा था।

उनके स्थानीय गाइडों ने एक लंबे, दो पैरों वाले प्राणी को देखा, जो लंबे-काले बालों से ढका था। हालाँकि हॉजसन ने स्वयं यह प्राणी नहीं देखा था। हॉजसन के निष्कर्ष में यह एक वनमानुष था, जिसे उन्होंने येति नाम दिया।

इसके पश्चात सन् 1889 में 'अमंग दि हिमालायज' में लॉरेंस वाडेल ने एक विशालकाय दो पैरों वाले भालू जैसे प्राणी को देखने की चर्चा की, लेकिन वे भी इसका कोई प्रामाणिक विवरण नहीं पा सके, सब कुछ कही-सुनी बातों पर आधारित था। सन् 1921 में ब्रिटिश खोजकर्त्ता हेनरी न्यूमैन ने एक पत्रकार वार्त्ता में ऐसा ही दावा पेश किया था।

सन् 1921 में ही लेफ्टिनेंट कर्नल हावर्ड बरी ने एक नेपाली शेरपा से मेतोह-कांगमी के नाम से

इस भीमकाय जीव का नाम सुना था, जब 6400 मीटर (20,000 फीट) ऊँचे ल्हाक्पा-ला को पार करते हुए लंबे डग भरने वाले नंगे पैरों वाले आदमी के पैरों के निशान मिले थे।

सन् 1925 में टेलीग्राफ में छपी रिपोर्ट में जर्मन फोटोग्राफर तथा रॉयल जियोग्राफिकल सोसायटी के सदस्य एम०ए० टोक्बाजी लिखते हैं कि उन्होंने 200 मीटर की दूरी से एक इनसान की तरह चल रहे एक ऐसे प्राणी को देखा, जिसके शरीर पर अत्यधिक बाल थे। दिखने में वह काला था और शरीर पर कपड़े नहीं थे।

यह घटना जेमू ग्लेशियर के पास लगभग 4600 मीटर (15000 फीट) की ऊँचाई पर घटी थी। इन पदचिह्नों की रचना एक इनसान के पैरों के निशान जैसी थी, लेकिन अंतर इतना था कि यह पदचिह्न छह से सात इंच लंबे और चार इंच चौड़े थे।

सन् 1950 के दशक में येति को लेकर पश्चिमी लोगों की रुचि में खासा इजाफा हुआ और कई खोजकर्त्ता इस दिशा में काम पर लग गए। अब तक सारी बातें बिना किसी सबूत के हो रही थीं, सन् 1951 में ब्रिटिश पर्वतारोही एरिक शिप्टन येति के पैरों के निशान के साथ सामने आए।

वे एवरेस्ट चढ़ने के वैकल्पिक मार्ग पर आगे बढ़ रहे थे। सागर तल से लगभग 6000 मीटर (20,000 फीट) ऊपर बरफ में एरिक शिप्टन ने ये चित्र पश्चिमी एवरेस्ट के मेन लोंग ग्लेशियर पर लिए थे।

पैरों के ये निशान लगभग 13 इंच लंबे थे और इन्हें अब तक हिमालय पर लिए गए चित्रों में सबसे रोचक गिना जाता है। इनमें एक अँगूठा स्पष्ट दिख रहा था। हालाँकि यह तसवीर काफी चर्चा में रही और विवादास्पद भी रही। बाद में इसको बरफ पिघलने से बनी आकृति मानकर अस्वीकृत किया गया।

सन् 1953 में सर एडमंड हिलेरी और तेनजिंग नोर्गे ने माउंट एवरेस्ट पर चढ़ते समय बड़े-बड़े पद्चिह्नों को देखने की बात कही। तेनजिंग का मानना था कि येति एक विशाल वानर था। हालाँकि उन्होंने उसे कभी नहीं देखा, इनके पिताजी ने दो बार देखा था।

येति को लेकर कई मान्यताएँ हैं। कुछ इसे एक प्रकार का बंदर तो कुछ इसे भालू मानते हैं। कुछ लोगों के अनुसार यह विलुप्त दैत्याकार वानर जाइगन्टोपिथेक्स का आधुनिक नमूना हो सकता है। सन् 1970 में ब्रिटिश पर्वतारोही डॉन ह्विलसंन ने अन्नपूर्णा पर चढ़ते समय एक ऐसे ही दो पैरों वाले वानर जैसे प्राणी को देखने का दावा किया था, जो शिविर से कुछ दूरी पर भोजन की तलाश में था। सन् 1986 में पर्वतारोही रिनहोल्ड मेसनर ने येति से सामना होने व इसके अस्तित्व के होने का दावा किया था। इसके बाद इक्कीसवीं सदी में भी इस तरह के कई किस्से सामने आए।

सन् 2007 में अमेरिका के एक टेलीविजन शो के होस्ट जोशुआ गेट्स और उसकी टीम ने नेपाल के एवरेस्ट क्षेत्र में पदचिह्नों की शृंखला ढूँढ़ने की सूचना दी थी, जो येति के सदृश थे। इनके पदचिह्नों की लंबाई 33 से०मी० थी। सन् 2008 में जापानी पर्वतारोहियों के दल ने पदचिह्नों के चित्र लिए, जो संभवत: किसी येति के पैरों के निशान थे। सन् 2011 में नेपाल के एक मठ में येति की उँगली पाए जाने का दावा किया गया, जो बाद में जाँच करने पर इनसान की निकली।

सन् 2011 में रूस के विशेषज्ञों ने भी साइबेरिया में येति के होने का दावा किया। यहाँ के येति विशेषज्ञ आइगर बुर्तसेव के अनुसार ये प्रकृति के साथ एकात्म भाव से रहते हैं। हालाँकि

ठोस प्रमाण के अभाव में अभी तक यह अनुमान मात्र हैं। सन् 2013 में बीबीसी रिपोर्ट के अनुसार ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के जेनेटिक विशेषज्ञ ब्रायन साइक्स ने येति की डीएनए रिपोर्ट निकाली। इसके अंतर्गत लिए गए नमूनों में दो 40 हजार पूर्व के ध्रुवीय भालू और भूरे भालू की एक संकर नसल के निकले, जिसे येति होने का अनुमान लगाया गया।

सन् 2017 में हिमालय व तिब्बत के मठ, गुफा आदि से येति के दाँत, हड्डी, बाल, त्वचा, मल आदि के 9 नमूने लाए गए। जो जाँच करने पर भालुओं की विभिन्न प्रजातियों के निकले। 1 नमूना कुत्ते का निकला। 9 अप्रैल, 2019 में भारतीय सेना, नेपाल-चीन सीमा पर मकालू बेस कैंप के समीप, 32 इंच लंबे व 15 इंच चौड़े पदचिह्नों की शृंखला मिली। संभवत: अब तक के ये सबसे स्पष्ट पदचिह्न थे, लेकिन प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में यह भी चर्चा तक सीमित रहे।

इस तरह येति की विश्वभर में इतनी चर्चा हो चुकी है कि अब यह लोकप्रिय संस्कृति का हिस्सा बन चुका है। फिल्मों, साहित्य, संगीत और वीडियो गेमों में अपनी उपस्थिति दर्ज करने वाला येति एक सांस्कृतिक प्रतीक का रूप ले चुका है। येति को लेकर कई फिल्में बन चुकी हैं। कई टीवी धारावाहिक इस पर प्रदर्शित हो चुके हैं। कई लोकप्रिय कॉमिक पुस्तकों में यह एक रोचक पात्र का स्थान पा चुका है। येति पर कई वीडियो गेम बन चुके हैं। नेपाल में एयर लाइन से लेकर लग्जरी होटल के नाम येति पर हैं।

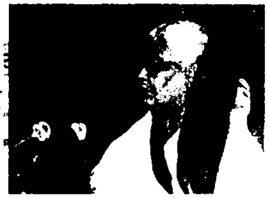
इस तरह हिमालय संस्कृति में रचा-बसा येति आज पूरे विश्व में छा चुका है और मजेदार बात यह है कि अभी तक कोई भी येति के होने का पक्का सबूत नहीं दे पाया है, और साक्ष्यों के अभाव में किंवदंतियों व चर्चा का सरताज येति आज हिमालय की एक अबूझ पहेली के रूप में शोध व जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। ❑

राजा मुचकुंद अनेक वर्ष तपस्या करने के बाद स्वर्ग पहुँचे। वर्षों तपस्या करने के कारण उनका पुण्य इतना ज्यादा बढ़ गया था कि उसके एवज में उन्हें स्वर्ग का सिंहासन देना निर्धारित किया गया। राजा, देवराज के पद पर आरूढ़ हो गए। उनके सत्कार में यक्ष, गंधर्व व अप्सराओं ने नृत्य तथा संगीत प्रस्तुत किए।

यह सब देख-सुन मुचकुंद को अभिमान हो गया। उनसे मिलने सप्तर्षि पहुँचे तो न तो वे उनके सम्मान में खड़े हुए और न ही उनसे बैठने को पूछा। सारा समय आत्मप्रशंसा में ही गुजार दिया। इस दुर्व्यवहार ने उनका सारा पुण्य नष्ट कर दिया और वे धरती पर आ गिरे। उन्हें भान हुआ कि पुण्य अर्जन का पथ जितना कठिन है, पुण्य-विसर्जन का उतना ही सरल।

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

तपश्चर्या के लाभ (उत्तरार्द्ध)



विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमवंदनीया माताजी अपने इस प्रस्तुत उद्बोधन में सभी साधकों को उस शाश्वत सत्य से परिचित कराती हैं, जो अनादिकाल से तपस्या का आधार रहा है। नवरात्र-साधना में भाग लेने के लिए आए सभी साधकों को संबोधित करते हुए वंदनीया माताजी कहती हैं कि किसी भी साधक के लिए तपस्या तभी फलीभूत हो पाती है, जब उसका अंतःकरण परमात्मा से एकरूप हो पाता है। अंतर्मन की भावनाएँ जब इष्ट को समर्पित हो पाती हैं, तभी वे तपस्या के लाभ साधक को प्रदान कर पाती हैं। परमपूज्य गुरुदेव के जीवन का उदाहरण हरेक को देते हुए वंदनीया माताजी कहती हैं कि हमें उनके जीवन से प्रेरणा ग्रहण करने की आवश्यकता है। पूज्य गुरुदेव ने स्वयं को जीवन भर गलाया और तपाया एवं उसी के परिणामस्वरूप तपस्या के लाभ प्राप्त कर पाए। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.......

समर्पण किया आपने ?

बेटे! अध्यात्म जगत् की हर चीज श्रद्धा के बल पर, भक्ति के बल पर ही खरीदी जाती है। पैसों से नहीं खरीदी जाती। बनावटीपन से नहीं खरीदी जाएगी। यदि श्रद्धा है आपके अंदर, तो शबरी भी हैं आप। तभी भगवान राम आपके यहाँ आएँगे। जैसे रामकृष्ण परमहंस की काली आकर के उनको खिलाती थी और काली को वे स्वयं खिलाते थे। वो निष्ठा कहाँ चली गई।

बोलते हैं साहब! उपासना में हमें आनंद ही नहीं आता। अरे आनंद आएगा कैसे? मन तो बेलगाम का घोड़ा बनकर न जाने कहाँ-कहाँ फिरता है। न जाने किधर को भटकता रहता है। हाथ में तो लगी है माला और दिमाग न जाने किधर-किधर जा रहा है।

कहीं व्यापार में जा रहा है। कहीं सर्विस में जा रहा है। कहीं लड़ाई-झगड़े में जा रहा है, तो कहीं बदले की भावना में जा रहा है। जाने कहाँ-कहाँ जा रहा है?

हम कहते हैं कि इन भावनाओं को त्याग दो। आप अपने को समर्पित करिए, फिर देखिए आपको कुछ मिलता है कि नहीं। आपने समर्पण किया है? नहीं, आपने समर्पण नहीं किया। माताजी, कैसे नहीं किया? किया तो है हमने। हम अंशदान देते हैं। दिया है कि नहीं दिया है? हाँ बेटे, सिर-माथे पर है।

यदि यह अंशदान आप नहीं देते, तो इतनी बड़ी बिल्डिंग कहाँ से बनती? जो यहाँ के

क्रियाकलाप हैं, वो कैसे चलते? यहाँ के जो इतने कार्यकर्त्ता हैं, कितने भावनाशील कार्यकर्त्ता हैं। जो अपनी सर्विस छोड़ करके आए हैं। आप उनकी निष्ठा को तो देखिए। आप उनकी श्रद्धा को देखिए।

क्यों साहब! ये आ कैसे गए? आपको मालूम है, कैसे आ गए? ये बेटे! अपने आप नहीं आए हैं। सही मानना, एक भी अपने आप नहीं आया। ये खींच-खींचकर बुलाए गए हैं। जैसे गोताखोर होता है न, वह समुद्र में गोता लगाकर मणि-माणिक्य पाता है। हमने इन मणि-माणिक्यों की माला बनाकर, पिरोकर रखा है। हम गोताखोर हैं। हम बुलाते हैं। इनको भी बुलाया है, तब आए हैं।

हाँ, अंशदान दे दिया, मुबारक है बेटे! बहुत-बहुत धन्यवाद आपके लिए। कम-से-कम आपके अंदर यह उदारता तो आई। आपके अंदर भगवान की शक्ति ने वह काम तो किया कि हमको अपने लिए और अपने बीबी-बच्चों के लिए ही नहीं; बल्कि इस मिशन के लिए भी सोचना है कि मिशन हमारा एक पिता है। मिशन हमारा एक भगवान है। भगवान या पिता न मानें, तो चलो एक बेटा ही समझ लो। आपके चार बेटे होते, तो उनके लिए आप कुछ करते कि नहीं करते? चलिए एक बेटा ही आपने समझा।

श्रद्धा है तो श्रेष्ठ हैं आप

आप लोगों के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद है; लेकिन मैं तो एक और बात कह रही थी। मैं बात कह रही थी—श्रद्धा की। यदि आपकी श्रद्धा है, तो आप हीरे के हैं, मोती के हैं। हमारे लिए आप सब कुछ हैं और फिर देखिए हम आपको श्रेष्ठ बनाते हैं कि नहीं। आप अपने को जरा समर्पित तो करिए हमको। कह दीजिए कि हम वह काँच का टुकड़ा हैं, जो देखने में हीरा जैसा लगता है, चमचमाता है पर है नकली हीरा।

दिल्ली में एक दुकान है। एक लड़का आया और बोला माताजी! आप अपनी पोती की शादी करेंगी? हाँ, बेटा कर तो रहे हैं। तो मैं आपको एक हीरे की चीज दिखाऊँ क्या? दिखा जरा, देख तो लूँ क्या है? तो वह लाया। मैंने चुपके से उससे कान में पूछा—क्या है रे ये? देना तो मुझे कुछ है नहीं। न दिया है, न हमने लिया है। न हम देंगे, न लेंगे। हमें हीरा-पन्नों से क्या करना? पर वह विनोद की बात थी, जो थी सस्तेपन की। उसने मुझे एक हार दिखाया, बड़ा जड़ाऊ और देखने में बहुत बढ़िया लगा। कितने का है जरा बताना?

मनुष्य को अपनी सामर्थ्य पर विश्वास रखना चाहिए और उसी के विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील होना चाहिए। अपनी सामर्थ्य चुकने पर ही परमात्मा का आश्रय लेना चाहिए। दैवी अनुग्रह पात्रता के अनुरूप ही उपलब्ध होता है, इसमें कोई संदेह नहीं।

उसने कहा माताजी यह चार सौ रुपये का है। बेटे! चार सौ में तो एक नग भी नहीं मिलता हीरे का। इसको कहाँ से उठा लाया? चल और किसी को बहकाना।

माताजी को बहकाने आया है। उसने सही बात बता दी कि चार सौ का है। मैं तो कह रही हूँ कि जितने आप बैठे हैं। ये कितने के हैं? चार सौ के हैं, पर अब सही हीरा बनने के

लिए तैयार हो जाइए। फिर देखिए आपकी बोली कितने की लगेगी? करोड़ों की, अरबों की लगेगी। उतनी लगेगी, जितनी गांधी जी के सिर की लगी थी। किसी ने यह कहा था कि गांधी जी का सिर हमें मिल जाए, तो अरबों-खरबों निछावर कर दें, इसके ऊपर। अरबों-खरबों निछावर कर देंगे इस एक सिर के लिए, फिर आप तो इतने बैठे हैं।

बेटे! हीरा बनने के लिए तैयार तो हो जाइए, फिर देखिए आपके अंदर से कैसी-कैसी सतरंगी किरणें निकालते हैं। फिर हम आपको कैसी बढ़िया मूर्ति के रूप में, उस संत के रूप में खड़ा करते हैं। कुछ ऐसा, जो सारा संसार आपको देखता रह जाए और पूजता रह जाए, पर हम अपने बच्चों को पीछे इसलिए रखते हैं कि कहीं इनमें अहंकार न आ जाए। हमने पुजवाकर भी देख लिया है। बस, पूजने को ही नहीं कहेंगे कि कोई इन्हें पूजना।

यदि देना ही हो तो श्रद्धा जरूर देना। व्यक्ति की निष्ठा को आगे बढ़ाना; लेकिन पूजना मत हर किसी को। पूजा आपको गया, पर हमारा तो बिचारा लाख का हीरा खाक में मिल जाता है। हम क्या करें तुम्हारी पूजा का, हमें नहीं चाहिए ऐसी पूजा। हमें तो वह पूजा चाहिए, जिससे आप भी आगे बढ़िए और दूसरों को भी आगे बढ़ाइए। क्यों साहब! हम कैसे आगे बढ़ेंगे? यही तो मैं अभी कह रही थी कि श्रद्धा के बल पर और लोकमानस के सहयोग के रूप में आप आगे आइए।

आप देखिए कि जितने भी संत हुए हैं, कबीरदास से लेकर अभी तक सभी ने उपासना की है। उन्होंने उपासना तो की भगवान की; लेकिन सारी-की-सारी जिंदगी लोक-मंगल के लिए लगा दी। जब तक उनके शरीर में प्राण रहे, तब तक वे भगवान की उपासना करते ही रहे। भगवान की जो सही रूप में उपासना करता है, वह उसी रूप में उन्हें पा लेता है।

हम अपने मल और विक्षेप को हटाने के लिए तैयार नहीं होते। अपनी मलिनताओं को त्यागने के लिए हम तैयार नहीं होते। मोह और लोभ की जंजीरों से हम इस कदर जकड़े रहते हैं कि उनको खोल ही नहीं पाते। अगर उसको एक झटका दे दें, तो वे जंजीरें अलग जाकर गिर जाएँ, जिनमें हम जकड़े रहते हैं।

कृपा करके आप उन जंजीरों से निकलिए और देखिए कि आप कुछ पाते हैं कि नहीं पाते। तो फिर हमको करना क्या पड़ेगा? बेटे, बहुत बड़ा तो कुछ नहीं करना पड़ेगा। देखो, आप कुछ नहीं करेंगे, तब भी यह परिवर्तन तो होने ही वाला है। यह क्रांति तो हर हालत में होनी ही है।

हर विषम समय में भगवान ने जन्म लिया है। संत के रूप में, शहीद के रूप में शक्तियाँ आती रही हैं और आती ही रहेंगी। जब-जब समय पड़ेगा, वे शक्तियाँ आती रहेंगी इनसान के रूप में और परिवर्तन होता रहेगा। जो कि आदिकाल से होता चला आया है। भगवान राम के समय से लेकर कृष्ण के समय तक, बुद्ध के समय से लेकर गांधी के समय तक और अब तो सतयुग की वापसी का इंतजार है।

इस समय तो कलियुग है। हाँ बेटे, घोर कलियुग है। ऐसा कलियुग है कि बस, आपसे क्या कहें। आपको यह भयावह दिखाई पड़ रहा है कि नहीं पड़ रहा है। सारे संसार में कैसी चीत्कारें मच रही हैं। इस विज्ञान का क्या ठिकाना है? जो विज्ञान सर्वनाश पर तुला हुआ है। क्या इसे कोई शांति देने वाला है? कोई अक्ल देने वाला है कि ये सारा-का-सारा संसार हमारा विनाश के कगार में चलता हुआ चला जा रहा है?

हमारी आग ले जाएँ

विध्वंशकारी है यह विज्ञान। विज्ञान है न, अक्ल है न? बेटे! यह किस काम की। किसी काम की नहीं है यह अक्ल। अब हम आपसे क्या कहें इस अक्ल के बारे में; लेकिन यदि यह अक्ल श्रद्धा उभारे तब, भावनाएँ उभारे तब? तो हम उनको वह शक्ति दें कि सारा संसार शांति पा सके, संतोष पा सके और प्रेरणा पा सके। इसी के लिए हम समय-समय पर आपको झकझोरते रहे हैं और आज भी आपको झकझोर रहे हैं। जब कभी भी आप आएँगे, हमेशा आपसे एक ही प्रार्थना हम करते रहेंगे कि बेटे आप हमारी आग को ले जाइए।

कौन-सी आग है हमारी? वह हमारी जनमानस की आग है, जो आपको दिखाई नहीं पड़ती है। वही मैं कह रही थी कि गुरुजी के अंतरंग में घुसिए, तो आपको एक ऐसी धधकती हुई ज्वाला नजर आएगी। वह ज्वाला यह कह रही है कि बेटे, आप घर में से निकलकर आओ। आप अभी भी नहीं देख पा रहे हैं। तो कोई ऐसा समय आएगा, जब आप हाथ मलते हुए रह जाएँगे और यह कहेंगे कि एक संत इस दुनिया में आया था। जिसने हमको दिशा दिखाई थी और यह कहा था कि इस रास्ते पर चलो, पर हमने गवारा नहीं किया। हम उसके लिए तैयार नहीं हुए। फिर आप सब ढूँढ़ते रहेंगे, और आप अन्य सबकी झोली में जाते रहेंगे। कहाँ-से कहीं-से कुछ भी मिल जाए, पर क्या मिल जाएगा?

धिक्कार है चमत्कार पर

कई लड़के आते हैं और कहते हैं कि हम तो वहाँ गए थे। हमने उनका ऐसा चमत्कार देखा। क्या चमत्कार देखा? उन्होंने बालों में से बालू निकाल दी। अच्छा और क्या किया? उन्होंने हाथ की मुट्ठी में से लौंग निकाल दी। अच्छा यह तो बड़ा भारी चमत्कार है और पानी में चलना सिखा दिया। और क्या किया? आहा, पालथी लगाई और ऐसे उड़ते चले गए कि वाह। अच्छा, ये सिद्धियाँ, यह चमत्कार।

बेटे! इस चमत्कार को धिक्कार के योग्य कहूँगी। यह चमत्कार है कोई? कोई चमत्कार नहीं है। यह हाथों का खेल है, चाहे बालू निकाल दो और चाहे लौंग निकाल दो। क्या हुआ लौंग निकालने से? हम कहें सिद्धि ही सही, पर कौन-सी सिद्धि है? जिससे इनसान में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, उसके हृदय का परिवर्तन नहीं हुआ। यह कौन-सी उपासना है? यह कौन-सा तप है?

आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम्।
आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः॥
आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान् भवेत्॥

—शि०पु०, वा०सं०, 7/2/14/55-56

अर्थात आचार परम धर्म है, आचार परम धन है, आचार परम विद्या है और आचार ही परम गति है। आचारहीन पुरुष जगत् में निंदा पाता है और परलोक में भी सुख नहीं पाता है। इसलिए सबको आचारवान होना चाहिए।

तप वह है, जो कि व्यक्ति को बनना सिखाता है। अँगुलिमाल गए थे भगवान बुद्ध के पास। किसके लिए गए थे? लूट-पाट करने के लिए। लेकिन जब उनका सही रूप देखा, तब उन्होंने कहा कि जिस रास्ते पर तुम चल रहे हो न, वह रास्ता धिक्कारने योग्य है और हम जो रास्ता बता रहे हैं, वह सही रास्ता है। बात समझी और अँगुलिमाल संत हो गए। जिस युग में जो आवश्यकता होती है, अगर उसके अनुरूप व्यक्ति नहीं उठता है, तो फिर

वह कभी नहीं उठ सकता। वह कुछ कर सकेगा? नहीं, कुछ नहीं कर सकेगा।

आज युग की माँग है—संगठित होना। जिसके लिए आपसे समय-समय पर कहा जाता है कि एक से पाँच बनिए, पाँच से पच्चीस बनिए। आप प्रज्ञामंडल बनाइए, आप गोष्ठियाँ करिए, सत्संग चलाइए। आपने दीपयज्ञ किया।

संगठन की शक्ति

इसके पीछे क्या राज छिपा है, आपको मालूम है? आपको तो केवल क्रियाकलाप ही मालूम हैं कि हमसे यह कह दिया गया है। एक से पाँच बनाओ, पाँच से पच्चीस बनाओ। संगठन बनाओ। हाँ बेटे, संगठन में बहुत बड़ी शक्ति है। संगठन तभी बन पाता है, जब व्यक्ति के अंदर से वह स्फुरणा पैदा होती है और वह ललक होती है कि हमको कुछ कर गुजरना है। जो कर गुजरना है, वह हमारा विश्वास कराता है। सारे-के-सारे कार्य उसकी आस्थाएँ कराती हैं।

देखिए साहब! हम तो जाते हैं, पर कोई सुनता ही नहीं है। सुनेगा कैसे? आपके अंदर वह शक्ति है कि कोई आपकी सुने? आप मरे-मराए से, बुझे-बुझाए-से तो हैं। बीमारी के मारे-से तो हैं, टी.बी. के मारे-से तो हैं। नहीं साहब! टी.बी. कहाँ है हमको? देखिए हम तो बिलकुल हट्टे-कट्टे बैठे हैं। आप देखने में हट्टे-कट्टे बैठे हैं, लेकिन आपके चेहरे से देखा जाए, तो आपके अंदर वह ओज नहीं है, जो ओज होना चाहिए। आप अपने को ओजवान बनाइए।

बेटे! हम कब कहते हैं कि माँ के पेट से ऐसे बच्चे पैदा नहीं होते, जो कि शक्ति लेकर चले आते हैं। कुछ पीछे बनते हैं, आप भी अब बनिए न। अब समय आ गया है, आप आगे बढ़िए। अपने घर की महिलाओं को आगे बढ़ाइए। अपनी पत्नी को भी आगे बढ़ाइए। नहीं साहब! हमारी पत्नी आगे बढ़ेगी, तो हमारी नाक कट जाएगी। कट जाने दें नाक को, एक दिन कटनी है, तो कट-कटा जाए क्या हर्ज है? यहीं रख जाना अपनी नाक को, काट करके शांतिकुंज में फेंक जाना। इनको आगे तो बढ़ाइए। आप आगे तो चलिए। आप आगे चलना नहीं चाहते हैं, आप कुछ करना नहीं चाहते हैं। जिस दिन आपके मन में कुछ करने की भावना पैदा होगी, फिर देखिए आप आगे-आगे चलते हैं कि नहीं। लोग आपकी बात को सुनते हैं कि नहीं सुनते। देखना सब सुनेंगे।

बेटे! आपके साथ हम हैं न, पर आपको विश्वास नहीं है। जिस दिन आपको यह विश्वास हो जाएगा कि हमारे साथ गुरुजी हैं, माताजी हैं, गायत्री माता हैं और एक कितनी बड़ी फौज आपके साथ खड़ी है। फिर देखिए आपके अंदर शक्ति आती है कि नहीं आती है। गुरुजी के साथ कौन था? बेटे परोक्ष था, प्रत्यक्ष तो कोई नहीं था।

कब आती है शक्ति?

उनके साथ परोक्ष था और उनकी श्रद्धा थी, उनकी निष्ठा थी। उसने इतनी शक्ति उनके अंदर भर दी कि मैं तो यह समझती हूँ कि सारा विश्व एक तरफ और वे अकेले एक तरफ हैं। शक्ति है कि नहीं? बिलकुल शक्ति है। शक्ति कब आती है? शक्ति तब आती है, जब हम उठने को तैयार होते हैं—हम यदि उठने को, आगे बढ़ने को तैयार नहीं होते और गिरने को तैयार होते हैं, तो दस लोग धक्का देने वाले तैयार हो जाएँगे। यदि हम उठने के लिए तैयार होंगे, तो हमको हजार हाथों से उठाया जाएगा।

शीरी-फरहाद की घटना

शीरी-फरहाद का किस्सा आपने सुना होगा। शीरी फरहाद से विवाह करना चाहती थी। उसके पिता ने कहा कि इसकी शादी की जाएगी, पर इस

तरीके से शादी नहीं करेंगे। उन्होंने सोचा जब किसी तरीके से बला नहीं कटेगी, तो एक तरीके से कटेगी। सो उन्होंने कहा कि देख भाई! तू पहाड़ को काट करके और नहर निकालना, तब हम शादी करेंगे। पहले उसके मन ने कहा कि शक्ति ही नहीं है, हमारे अंदर तो इतना बड़ा काम कैसे कर लेंगे? फिर उसकी अंतरात्मा ने शक्ति को झकझोरा-शक्ति कैसे नहीं है? अभी निकालते हैं और बातों-ही-बातों में वह नहर निकाल लाया। अकेला जूझा, अकेला कर लाया?

नहीं बेटे, व्यक्ति अकेला नहीं करता। उसके साथ में समूह होता है। संगठन में बहुत बड़ी शक्ति होती है। इतनी बड़ी शक्ति होती है कि जब पुल पर से फौज निकलती है, तो उनसे पहले से कह दिया जाता है कि देखिए जिस तरह आप रोड पर चलते हैं, ऐसे मत चलना, नहीं तो पुल टूट जाएगा। आप बिखरे हुए चलना। कदम ताल, लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट करते मत चलना। समझ में आ गई कि संगठन में बहुत बड़ी शक्ति है।

जो कोई आता है, आपके संगठन की ओर देखता हुआ चला जाता है। सबके मुँह में पानी आता रहता है। मैं संगठन की बात को बता रही हूँ। जब आप संगठित हो जाएँगे और जिधर भी निकलेंगे, जैसे अभी आप जब हरिद्वार में निकलते हैं, तो सारे-के-सारे यह देखते हैं कि ये कौन आ गए?

ये सेना कहाँ की आ गई? किनकी है? शांतिकुंज वालों की, गुरुजी की है ये सेना। अन्य जगह तो दिखाई नहीं पड़ते, पर यहाँ हर समय दिखाई पड़ते हैं। क्यों? यहाँ का वातावरण है न। यहाँ संगठित हैं। ये हमारे हैं और हम इनके हैं।

हम आपके और आप हमारे

बेटे! हम आपके हैं और आप हमारे हैं। हम आपको कैसे बताएँ? आपके दु:ख-दरद और पीड़ा में किस कदर हम आपके ऊपर छाए रहते हैं, यह हमारी अंतरात्मा ही जानती है। यह बात अलग है कि हम आपकी मदद कर पाए कि नहीं कर पाए? यह तो आपका प्रारब्ध होगा, प्रारब्ध भोग होगा। जब अभिमन्यु मारा गया, तो सुभद्रा रोती हुई आई और उसने कृष्ण से कहा—"आप मेरे भाई और अर्जुन के मित्र हैं। मेरा लड़का अलग है, जो देखते रहे, ऐसा कैसे हो गया?"

तो भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—"बहन, भगवान तो जरूर हूँ और कुछ करना चाहता तो कर भी सकता था; लेकिन कर्मबंधन और प्रारब्धजन्य जो भोग हैं, वे तो हर इनसान को भोगना चाहिए। तुझे भी भोगना चाहिए और मुझे भी भोगना चाहिए। भोग या तो बच्चा भुगतेगा या बाप भुगतेगा। कर्ज कौन अदा करेगा? या तो बेटा करेगा या बाप करेगा। या तो शिष्य स्वयं ही भोगे यदि स्वयं भोगने में सक्षम नहीं है और गुरु की उदारता है, क्योंकि वह उनका बच्चा है, उनका शिष्य है तो गुरु भोगे।"

गुरु आत्मबल ही नहीं देता; बल्कि उसके जो दु:ख, कष्ट, कठिनाइयाँ होती हैं—उन्हें भी अपने ऊपर लेता है। भोगेगा? भोगना चाहिए, हम भी भोगने के लिए तैयार हैं। हमें भी भगवान किसी के बदले में कोई ऐसी बीमारी देता है, तो हम सहर्ष उसको स्वीकार करेंगे; लेकिन हम विश्वास के साथ कहते हैं कि जो भी आपके कष्ट-कठिनाई और पीड़ा है? हर संभव यह प्रयास करेंगे कि आप उस दलदल में से निकलें। मान लीजिए, यदि किसी तरीके से आप नहीं निकल पाए, तब हम आपको शक्ति देते रहेंगे कि आप उन परिस्थितियों से या तो तालमेल बैठा लें या कुचलकर फेंक दें। आपको वह शक्ति देंगे। शक्ति के रूप में आत्मबल देंगे।

कुछ समय पहले एक सज्जन आए। उन्होंने कहा कि आप सरकार से कोई सहायता नहीं लेते? सरकार क्या देगी हमको? हम देंगे, आप क्यों देंगे? मैंने कहा ऐसी प्रखर बुद्धि के व्यक्ति देंगे। हम संस्कारवान और परिष्कृत व्यक्ति देंगे, जो जिधर जाएँ, उधर ही माहौल ऐसा बढ़िया बना करके रख दें। सरकार और मिल जाए, तो वही-के-वही हमारे व्यक्ति दिखा दें कि कैसे काम होता है। हम तो वह देंगे आपको। हम श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं, आप बनिए। आप यहाँ से कुछ बन करके जाइए। यहाँ आप अपनी संकीर्णताओं को और क्षुद्रताओं को छोड़ करके जाइए।

सारे संसार में विकृतियाँ फैली हुई हैं, इनके लिए हम आपसे कुछ माँगते हैं। क्या माँगने आए हैं? हम माँगने आए आपका समय, आपका श्रम, आपकी श्रद्धा, आपकी भावनाएँ। हम कुछ और माँगने के लिए नहीं आए हैं। पैसा माँगने के लिए मत कहना। हम कोई भिखारी हैं? नहीं बेटा! हम भिखारी नहीं हैं, जो आपके सामने पल्ला फैलाएँगे। भगवान के सामने फैलाएँगे, जिसने सारा-का-सारा हमको सहयोग दिया है। वही भगवान आपके अंदर आएगा, वही कराएगा, वही करेगा। आपसे क्यों कहेंगे? आपसे नहीं कहेंगे। आपसे एक ही बात हम कहेंगे कि जो पीड़ा और पतन आप को पुकार रहा है? उसके लिए आप खड़े हो जाइए और आगे बढ़िए।

कुरीतियों को दूर करें

आपको मालूम नहीं है कि हमारी कितनी कन्याएँ जला दी गई हैं। कितनी मार दी जाती हैं, कुँवारी रह जाती हैं। क्या उनकी चीत्कार कानों में नहीं पड़ती? पड़नी चाहिए। अन्यान्य विकृतियाँ हैं, जो कि हमारे समाज में कोढ़ हैं। वह कोढ़ पुकार रहा है कि भाई! कोई मरहम लगाओ, कोई पट्टी बाँधो। आपकी जरूरत है और आपको उनके साथ होना ही चाहिए। काम तो होगा ही; लेकिन रीछ-वानरों को जैसा श्रेय मिला था, हम चाहते हैं कि आपको हनुमान के तरीके से श्रेय मिल जाए। मिलेगा तभी, जब आप हनुमान बन जाएँ।

हनुमान क्या थे? नौकर थे? नहीं। और क्या थे? बंदर थे। अच्छा तो हनुमान बड़े शक्तिशाली थे। हाँ, इसमें कोई दो राय नहीं, वे बड़े शक्तिशाली थे। कब थे शक्तिशाली? तब थे, जब भगवान राम से जुड़ गए। भगवान राम से जुड़ गए, तो भगवान ने उनके अंदर वह शक्ति भर दी कि सारी लंका को जला आए और सुरसा के मुँह में होकर भी निकल आए।

हाँ बेटे, यह समाजरूपी जो सुरसा है और हमारे लोभ-मोहरूपी जो सुरसा है, जो कि मुँह फाड़े खड़ी है। यह कहती है कि हमारे लिए, बस, हमारे लिए। हमसे आगे और किसी का नहीं है। आप खड़े हो जाइए कि नहीं, हम केवल आपके ही नहीं, बीबी के ही नहीं हैं, बच्चों के ही नहीं हैं। अगर किसी माने में हैं, तो अपने फर्ज और कर्त्तव्य के हैं। बाकी हमको कोई जकड़ नहीं सकता। जो जंजीर हमको जकड़ेगी, उसको हम तोड़कर फेंक देंगे। आप तोड़कर फेंकिए, उन जंजीरों को। कृपा करके आप श्रद्धा और निष्ठा की जंजीरों में बँधिए; जिसमें आपका भी कल्याण है और सारे संसार का भी कल्याण निहित है। इस कार्य के लिए आप आगे आइए।

विदाई के क्षण

आज विदाई देते हुए, मेरे अपने मन में तो लग रहा है कि मेरे बच्चे यहाँ से जा रहे हैं। मैं इनसे कुछ पूछ भी नहीं सकी। आए भी तो बेचारों को लाइन में खड़ा कर दिया। बेटा, आप कह जाइए अपनी बात और यह मत समझना कि माताजी ने हमसे कुछ पूछा नहीं था। बेटे, हम जाने-अनजाने सब

कुछ जानते हैं। आप जब सोते हैं, तब हम जागते हैं। अपने प्रत्येक बच्चे के सिर पर हम हाथ फिराते रहे हैं और यह वायदा करते रहे हैं कि हम आपके हैं। चाहे आपने कुछ कहा है, चाहे आपने नहीं कहा है, पर हमने आपको पढ़ लिया है; क्योंकि आप सब हमसे जुड़े हुए हैं।

आज आप विदा हो रहे हैं। आप जहाँ कहीं भी रहें, भगवान आपकी रक्षा करता रहे। जो कुछ भी हमसे बन पड़ेगा, हम भी आपकी रक्षा के लिए करेंगे। जहाँ-कहीं भी रहें, आप हमारे बन करके रहिए। हम आपके बनकर रहें और आप हमारे बनकर रहिए। आपको गुरुजी की, हमारी शक्ति मिले और भक्ति मिले।

आप यहाँ से भक्ति लेकर के जाना। आशीर्वाद में हम केवल अपने हृदय की आग की चिनगारी आपको समर्पित करते हैं। हम आप सबकी झोली में उस चिनगारी को डालते हैं। आप उस चिनगारी को लेकर के जाइए और उस चिनगारी को लगा तो दीजिए, फिर देखिए कि वह दावानल के रूप में दहकती हुई आपको दिखाई पड़ेगी।

बेटे! आप उस आग को लेकर के जाइए। जिसकी समाज में जरूरत है और मानव जाति को जरूरत है। उसको ऊँचा उठाइए, जो पीड़ा-पतन में गिरी जा रही है। जो सिसक रही है, उसको जीवनदान देना है। उसको ज्ञान देना है और प्रकाश के बिना ज्ञान नहीं आ सकता। जब ज्ञान आएगा, तब अज्ञानता हटेगी। अज्ञानता का अंधकार हटेगा और ज्ञान का सूर्य उदय होगा।

ज्ञान मिलता है साहित्य के द्वारा। जितना हम उसको पिएँगे, अक्षर नहीं पढ़ेंगे केवल। अक्षर पढ़ना बात अलग है। ज्ञान अक्षर से नहीं बनता। किससे बनता है? उस साहित्य से, जिसमें गुरुजी ने कितनी आग उँड़ेली है। उसके एक-एक अक्षर को आप पढ़िए तो सही।

आप तिलमिला जाएँगे। अरे यह क्या कह दिया? आप कहाँ पर चली गईं? साहित्य को आग ही बता दिया। हाँ, यह आग ही तो है, मैं कह रही हूँ। इस आग को, इस चिनगारी को आप फैलाइए। इस चिनगारी के रूप में आप यहाँ से आशीर्वाद लेकर के जाइए। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ।

न त्वहं कामये राज्यं, न सौख्यं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम् आर्त्तिनाशनम्॥

॥ ॐ शांतिः॥

परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी का जीवन, व्यक्तित्व के हर आयाम की दृष्टि से शिखर पर प्रतिष्ठित प्रतीत होता है। ज्ञान, तपस्या, संगठनशीलता, आत्मीयता—किसी भी दृष्टि से देखें गुरुसत्ता ने हर शिष्य एवं साधक के जीवन को गहराई के साथ स्पर्श किया है। हर गायत्री परिजन के लिए यह एक अलौकिक सौभाग्य का विषय है कि सन् 2026 में हम परमवंदनीया माताजी की जन्म शताब्दी को मना रहे होंगे। ऐसे अनेकों अखण्ड ज्योति के पाठक होंगे, जिनके पास परमवंदनीया माताजी से संबंधित ऐसे संस्मरण होंगे, जो अनेकों के हृदय को स्पर्श कर पाने की स्थिति में होंगे। सभी पाठकवृंद से यह विनम्र निवेदन है कि परमवंदनीया माताजी से संबंधित उनके स्वयं के अथवा किसी स्वजन के कोई संस्मरण हों तो वे उसे अनिवार्य रूप से शांतिकुंज के पते पर भिजवाने का कष्ट करें।

रामकथा से गुंजायमान हुआ विश्वविद्यालय



विश्वविद्यालय परिसर में इस बार के चैत्र नवरात्र के संध्याकालीन अवसर पर श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी द्वारा जो उद्‌बोधन दिया गया, उसका विषय था— 'रामकथा-अवतार कथा'। जब बात भगवान श्रीराम की होती है तो ऐसा लगता है इस एक शब्द 'राम' में सब कुछ समाया है। हमारी संस्कृति, हमारे जीवनमूल्य, हमारी सामाजिक मर्यादा और समूचा-का-समूचा हमारा देश, हमारा भारत देश।

इस बार के नवरात्र में रामकथा में भगवान श्रीराम के अवतार की कथाएँ हैं, जिन्हें नवरात्र के नौ दिनों के नौ मुख्य बिंदुओं में सँजोया गया है। भगवान श्रीराम का अवतार क्यों हुआ? इसकी पृष्ठभूमि में क्या घटनाक्रम हुए? इस बारे में गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

राम जनम के हेतु अनेका।
परम बिचित्र एक तें एका॥

—बा०कां० 121/1

अर्थात प्रभु श्रीराम के अवतार धारण करने के बहुत सारे कारण हैं और इनकी बहुत सारी विचित्र कथाएँ हैं, जिनमें अवतार के रहस्य छिपे हुए हैं, लेकिन सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि भगवान जब अवतार लेते हैं, तो अवतार का तात्पर्य क्या है?

अवतार का तात्पर्य यह है कि एक महाक्रांति का कार्यान्वयन। महाक्रांति का सूत्रपात, एक वैश्विक क्रांति। किसी भी अवतार का जन्म-कर्म किसी व्यक्ति से बँधा हुआ नहीं होता है। अवतार समष्टि की भूमिका को लेकर के आता है।

हमारी जो भूमिका है प्रकृति में, वो एक व्यक्ति की भूमिका है और भगवान के अवतार की जो भूमिका होती है, वो एक समष्टि की भूमिका होती है। वो अपने अंदर समष्टि को समेटे हुए होते हैं, जब भगवान अवतार लेते हैं, फिर अनेक वैश्विक समस्याओं का समाधान करते हैं।

(1) प्रथम दिवस—माता पार्वती की जिज्ञासा। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि इस रामकथा का सबसे पहले जन्म कहाँ हुआ? इसका मूल उद्‌गम कहाँ है? इसके बारे में वे कहते हैं—

रचि महेस निज मानस राखा।
पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर।
धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥

—बा० कां० 34/6

यह कथा सबसे पहले महादेव के मन में आई और उसको उन्होंने अपने मन में ही गोपनीय बनाए रखा।

एक बार माता पार्वती ने भगवान शिव से प्रश्न पूछा—

राम नाम कर अमित प्रभावा।
संत पुरान उपनिषद गावा॥

—बा० कां० 45/2

राम-नाम का तो बड़ा प्रभाव है भगवन्। अब मैं जानना चाहती हूँ कि ये राम कौन हैं? मुझे राम-कथा का तत्त्वोपदेश कहिए।

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

माता पार्वती के मन में यह बड़ी मूलभूत जिज्ञासा थी। क्यों? इस जिज्ञासा के कारण और अपने भ्रम के कारण अनेक-अनेक कष्ट उन्हें सहन करने पड़े।

माता पार्वती को सब कुछ याद था—वो सती रूप, भगवान शिव से उनका मिलन और फिर मिलन के बाद, भगवान शिव से बिछोह और इस बिछोह का कारण यही भ्रम था कि वो रामतत्त्व को नहीं समझ पाईं।

सतीदाह में उनका सिर्फ शरीर नहीं जला था, उनका वो मन भी जल गया था, जो बात-बात में संशय करता था, तर्क करता था, संदेह करता था, लेकिन अब माता पार्वती नए रूप में, नए ढंग से, नए तरीके से अपने उन सभी जन्मांतरों के भ्रमों का निवारण करना चाहती हैं, अब पार्वती जी भगवान शिव की केवल अर्द्धांगिनी ही नहीं थीं—उनकी अनुगत, उनकी समर्पित शिष्या थीं और इसलिए उन्होंने भगवान शिव से जिज्ञासा की।

(2) द्वितीय दिवस—भगवान शिव का समाधान। जब माता पार्वती, भगवान शिव से कहती हैं कि मैं यों ही भगवान राम के बारे में नहीं पूछ रही हूँ—मैं उनकी गूढ़ताओं के बारे में जानना चाहती हूँ, इसलिए पहले तो आप हमको रामतत्त्व की गूढ़ताओं का उपदेश दीजिए, रामकथा सुनाइए और राम का अवतार किस कारण, किस हेतु और किस रूप में हुआ—इसके पीछे क्या कारण निहित थे, यह भी आप बताइए।

यहाँ पर माता पार्वती की जिज्ञासा बड़ी सम्यक है। वे राम-नाम को, रामतत्त्व को, रामकथा को, राम के अवतार को सम्यक और समग्र रूप से जानना चाहती हैं और समझना चाहती हैं। भगवान शिव भी समर्थ सद्गुरु हैं, वे इस तत्त्व का समाधान करना चाहते हैं, लेकिन भगवान शिव ने, महादेवी पार्वती के प्रश्न पूछते ही यों ही समाधान देना शुरू नहीं कर दिया।

इस संदर्भ में गोस्वामी जी बड़ी मार्मिक बात कहते हैं—

मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह॥

—बा०कां० दोहा-111

जब माता पार्वती ने, भगवान शिव के समक्ष अपने प्रश्न व अपनी जिज्ञासाएँ प्रकट कीं, तो दो घड़ी तक भगवान शिव समाधि में डूबे रहे और समाधि में उन्होंने उस रस को, उस तत्त्व को, उन सारे प्रश्नों को, सम्यक रूप से साक्षात्कार किया। फिर उसे उन्होंने कहना शुरू किया और माता पार्वती को राम का तत्त्व, राम का सत्य, राम की कथा और राम का अवतार सिद्धांत बताया।

इस तरह भगवान शिव ने माता पार्वती को वो सारी बातें बताईं, जिनकी उन्हें जिज्ञासा थी। इस तरह अगर रामकथा का गोमुख भगवान शिव हैं तो रामकथा की गंगोत्तरी माता पार्वती हैं। अगर माता पार्वती की जिज्ञासा न होती और भगवान शिव की उन पर करुणा न होती, तो रामकथा अप्रकट ही रह जाती।

(3) तृतीय दिवस—जय-विजय की कथा। भगवान शिव ने कहा—हे पार्वती! भगवान श्रीराम, भक्तों के हित के लिए शरीर धारण करते हैं। हर कल्प में भगवान श्रीराम के अवतार हुए हैं और उन प्रभु श्रीराम के अवतार धारण करने के बहुत सारे हेतु हैं, बहुत सारी कथाएँ हैं। इनमें जो पहला हेतु है, उसमें सबसे पहले जय-विजय की कथा आती है।

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ।
जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥

—बा० कां० 121/4

जय और विजय, भगवान विष्णु के द्वारपाल हैं। भगवान से मिलने, उनसे अपनी समस्याओं का समाधान पाने के लिए देवतागण, ऋषिगण प्रायः उनके पास आते-रहते हैं।

एक बार भगवान विष्णु से मिलने सनत् कुमार आए। सनत् कुमार चार भाई थे—सनत्, सनक, सनातन और सनंदन कुमार। ये चारों ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हैं और ये बड़े उच्चकोटि के ऋषि हैं।

इनके बारे में कहा जाता है कि ये हमेशा 5-6 वर्ष की बाल अवस्था में रहते हैं—निर्दोष, निष्पाप, निर्मल, शुद्ध हृदय बालक के रूप में। इनकी अवस्था चिरबालक की तरह है।

बालरूप में सनत् कुमारों को देखकर द्वारपाल जय-विजय ने उनका मजाक उड़ाया और उन्हें द्वार पर ही रोक दिया, भगवान से मिलने नहीं दिया। सनत् कुमारों को भगवान के द्वारपालों से ऐसी उम्मीद नहीं थी, अतः क्रोधित होकर कुमारों ने उन्हें काम, क्रोध, लोभ की विशेषताओं वाले तीन खलनायकों के रूप में तीन बार पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप दिया।

जब द्वारपालों ने उनसे क्षमा माँगी और भगवान विष्णु ने उनसे अनुरोध किया, तो सनत् कुमारों ने जय-विजय को आश्वासन दिया कि आपको पृथ्वी पर तो राक्षसों के रूप में पैदा होना पड़ेगा, लेकिन विष्णु अवतार के द्वारा वे मुक्त हो जाएँगे।

इस तरह सनत् कुमारों के शाप से, जय-विजय पहले जन्म में हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु बने, दूसरे जन्म में ये दोनों रावण और कुंभकरण बने और फिर तीसरे जन्म में ये शिशुपाल और दंतवक्र बने और तीनों ही जन्मों में भगवान ने अवतार लेकर उनका उद्धार किया।

(4) चतुर्थ दिवस—जलंधर-सती वृंदा की कथा। एक कल्प में जलंधर के कारण भगवान ने अवतार लिया। जलंधर का मतलब है—जल ने जिसको धारण किया। कहते हैं भगवान शिव एक बार कुपित हुए और उनके तीसरे नेत्र से ज्वाला निकली, जो बहुत प्रचंड थी तो उस ऊर्जा को समुद्र देव ने धारण किया, जिसने एक बालक का रूप ले लिया।

इस तरह जलंधर शिव का तेज, शिव की ऊष्मा और शिव का प्रभाव लिए हुए था, इसलिए उसकी ऊर्जा, उसकी शक्ति, उसका बल असीम था। बालरूप जलंधर का पालन-पोषण समुद्र के अंचल में हुआ। एक मत्स्यकन्या ने उसका पालन-पोषण किया, लेकिन इंद्र ने उसका वध कर दिया। इसीलिए जलंधर ने देवों को अपना शत्रु मान लिया।

भगवान शिव की प्रेरणा से शुक्राचार्य ने उसका शिक्षण किया और उसको दैत्यों-दानवों का राजा बना दिया। इसके बाद दैत्यराजा कालनेमि की पुत्री वृंदा से उसका विवाह हुआ, जो कि भगवान विष्णु की परम भक्त थी और बड़ी तपस्विनी व परम सती थी।

गोस्वामी जी कहते हैं कि वृंदा ऐसी सती थी कि उसके सतीत्व का कवच पा करके जलंधर इतना बलवान हो गया था कि भगवान शिव भी उससे जीत नहीं पा रहे थे।

कहते हैं कि 5000 साल तक संग्राम चलता रहा, लेकिन जलंधर किसी भी तरह पराजित नहीं हुआ। तब भगवान विष्णु ने वृंदा के साथ छल किया, जिससे जलंधर का सती वृंदा के साथ जो प्राण-ऊर्जा का संपर्क था, वह टूट गया और फिर जलंधर उस युद्ध में पराजित हुआ।

जब वृंदा को यह सब भेद पता चला, तो उसने क्रोध में भगवान को शाप दिया—तुम पाषाण

हृदय हो, इसलिए पाषाण ही हो जाओ और भगवान शालग्राम शिला बन गए। चूँकि प्रकृति में कर्मफल विधान है, अतः इस संपूर्ण घटनाक्रम का परिणाम यह हुआ कि भगवान को अपने अवतार में पति-पत्नी के बिछोह का दरद सहना पड़ा।

वृंदा ने जब स्वयं को योगाग्नि में भस्म किया, तो वहाँ पर तुलसी का पौधा पैदा हुआ और उसी तुलसी के पौधे को भगवान ने स्वीकार किया था, उसी तरह लक्ष्मीरूपी सीता माता को अग्नि परीक्षा देनी पड़ी और तभी वो श्रीराम को स्वीकार्य हुईं।

अब जलंधर दैत्य क्या हुआ ? तो वही जलंधर उस कल्प में रावण हुआ, जिसे भगवान राम ने युद्ध में मारकर परमपद दिया। इतना ही नहीं, भगवान शिव की सहायता के लिए नारायण ने यह छल किया था, वहाँ पर भी जब नारायण भगवान श्रीराम रूप में आए और माता सीता के रूप में लक्ष्मी आईं तो शिव को आना पड़ा हनुमान के रूप में, नारायण की सहायता के लिए।

(5) पंचम दिवस—नारद मोह और रुद्रगण की कथा। एक कल्प में नारद के शापवश भगवान मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में आए। माता पार्वती चौंकी कि नारद ने भगवान को क्यों शाप दिया ? देवर्षि नारद के इस घटनाक्रम में पहली घटना है—नारद का तप, जिसमें उन्होंने हिमालय की एक पवित्र गुफा में तप किया, उनके तप से देवराज इन्द्र भयभीत हो गए, तो उन्होंने कामदेव को नारद जी का तप भंग करने के लिए भेजा।

दूसरी घटना है तप का अभिमान—देवर्षि नारद के तप में जब कामदेव ने विघ्न डाला तो नारद ने कामदेव को तो पराजित कर दिया, लेकिन नारद जी को अपने तप का अभिमान हो गया। इस अभिमान की कथा को सुनाने के लिए नारद जी सबके पास गए।

यह कथा उन्होंने ब्रह्मा जी को सुनाई, महादेव को सुनाई और नारायण को भी सुनाई और फिर नारायण ने माया का कौतुक रचा और उस कौतुक में शामिल हो गए दो रुद्रगण। जिन्हें भी नारद जी ने शाप दे दिया।

घटनाक्रम यह हुआ कि भगवान की माया ने वैकुंठ से भी सुंदर चार सौ योजन का एक नगर रचा। जिसके राजा शीलनिधि थे और उसकी पुत्री विश्वमोहिनी अत्यंत सुंदर थी, जिसका वो स्वयंवर करना चाहते थे, जब नारद जी ने उसे देखा, तो उस पर मोहित हो गए और अपना वैराग्य भूलकर वह उपाय खोजने लगे, जिससे उनका उस कन्या से विवाह हो जाए।

इसके लिए उन्होंने भगवान विष्णु से उनका रूप माँगा और अपने परम हित की उनसे कामना करने लगे, तो भगवान विष्णु ने कहा कि वो वही कार्य करेंगे, जिससे नारद जी का परमहित हो और भगवान ने उन्हें कुरूप बना दिया, अतः स्वयंवर में कन्या ने देवर्षि नारद की ओर पलभर देखा भी नहीं और स्वयंवर में जब भगवान स्वयं मनुष्य रूप में उपस्थित हुए, तो कन्या ने उनके गले में वरमाला डाल दी, फिर भगवान उस कन्या को लेकर वहाँ से चले गए।

यह देखकर नारद जी अत्यंत क्रोधित हो गए। इस संपूर्ण घटनाक्रम को दो रुद्रगण देख रहे थे और वो देवर्षि नारद का मजाक भी उड़ा रहे थे। कन्या के जाते ही जब रुद्रगणों ने देवर्षि नारद को अपना मुँह दर्पण में देखने के लिए कहा और उन्होंने अपना मुँह देखा तो सबसे पहले रुद्रगणों को शाप दिया, सबसे पहले रुद्रगणों पर ही उनका क्रोध उतरा कि अरे कपटी-पापी ! तुम दोनों जाकर राक्षस हो जाओ।

फिर वे नारायण के पास गए और उनकी दो-दो पत्नियाँ देखकर क्रोधित होकर शाप दिया कि

अरे जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही मनुष्य शरीर धारण करो। तुमने हमारा रूप बंदर-सा बना दिया, अब बंदर ही तुम्हारी सहायता करेंगे।

उन्होंने आगे कहा कि मैं जिस स्त्री को चाहता था, उससे मेरा वियोग कराकर तुमने मेरा बड़ा अहित किया है, इससे तुम भी स्त्री के वियोग में दु:खी होगे। इतना होने पर भगवान मुस्कराए और देवर्षि नारद का शाप शीश पर धरा तथा माया का आवरण वहाँ से हटा दिया, जिसके हटते ही नारद जी को होश आया और वो पछताने लगे कि उनसे क्या अनर्थ हो गया, तब भगवान ने उन्हें अपने अवतार का रहस्य समझाया।

(6) षष्ठ दिवस—मनु-शतरूपा की कथा। स्वायंभुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि हुई, उन दोनों पति-पत्नी ने मोक्ष की अभिलाषा से नैमिषारण्य तीर्थ में जाकर तप-साधना शुरू की और धीरे-धीरे उनका तप उग्र होने लगा।

पहले वे साग, फल और कंद का आहार करते थे और सच्चिदानंद ब्रह्म का स्मरण करते थे और फिर वे मूल आहार को त्यागकर केवल जल के आधार पर रहने लगे।

उनके हृदय में निरंतर एक अभिलाषा थी कि हम कैसे उन परम प्रभु को आँखों से देखें जो निर्गुण, अखंड, अनंत और अनादि हैं। कहते हैं कि इस तरह से जल का आहार करते हुए छह हजार वर्ष बीत गए। फिर वे केवल वायु के आधार पर सात हजार वर्ष रहे और उसके बाद उन्होंने वायु का भी आधार छोड़ दिया। दोनों एक पैर से खड़े रहे। उनका अपार तप देख करके देवगण उनके पास एक के बाद एक आने लगे।

देवगणों में त्रिदेव भी आए और इन्हें भाँति-भाँति से वरदान देने चाहे, पर धैर्यवान राजा-रानी अविराम तप करते रहे, जब परब्रह्म परमात्मा ने यह जान लिया कि इनकी भक्ति व निष्ठा अटल है, तब ऐसी आकाशवाणी हुई कि वर माँगो। तब उन्होंने कहा कि हमें वर दीजिए कि हम आपके उस स्वरूप को नेत्रों से देख सकें, जो महादेव के मन में बसता है।

उनकी प्रार्थना पर भगवान सियाराम रूप में उनके सम्मुख प्रकट हो गए। इसके बाद भगवान बोले कि मेरे बराबर कोई दानी नहीं मिलेगा। इसलिए राजन्, जो चाहते हो, समस्त संकोच त्याग कर माँग लो।

तब महाराज मनु बोले—''हे कृपानिधान! एक जीवन मुझे आपके साथ जीने की अभिलाषा हो रही है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप जैसा मेरा बेटा हो।'' भगवान मुस्कराए और बोले—''ऐसा ही हो। और हे राजन्! मैं अपने समान दूसरा कहाँ खोजूँ! इसलिए मैं खुद ही आ करके आपका बेटा बनूँगा।''

शतरूपा जी को हाथ जोड़े देखकर भगवान ने कहा—''देवी! तुम भी कुछ माँगो।'' तब शतरूपा ने कहा—''हे नाथ! राजा ने जो माँग लिया है, वही यथेष्ट है, परंतु फिर भी मैं माँगती हूँ कि हे भगवन्! आपके जो अनन्य भक्त हैं और जिस परम गति को वो पाते हैं—वो भी मुझे मिले।''

भगवान बोले—''हे माता! मेरी कृपा से तुम्हारा अलौकिक ज्ञान कभी भी नष्ट न होगा। कभी भी तुम्हारे अंदर ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की कमी न पड़ेगी।'' भगवान का जन्म लेना एक अलौकिक घटना है। चूँकि मनु-शतरूपा ने बहुत तप किया, इसलिए मानवस्वरूप में वे भगवान के साथ रहना भी चाहते थे।

कहते हैं कि इतनी तपश्चर्या, इतना गहन तप करने के बाद जो पवित्रता आती है, उस पवित्रता में ही भगवान प्रकट होते हैं और अवतार के लिए अपने अनुकूल वातावरण पाते हैं।

(7) सप्तम दिवस—राजा प्रतापभानु की कथा। राजा प्रतापभानु की कथा कई चरणों में है, जिसमें पहला चरण है—राजा प्रतापभानु का ऐश्वर्य चरम तक पहुँचना। दूसरा चरण है—उनके जीवन में एक ऐसा मोड़ आना, जिसने उनके जीवन को शापित कर दिया।

एक बार राजा प्रतापभानु शिकार के लिए गए, जहाँ उन्हें सुअर के रूप में कालकेतु राक्षस मिला, जिसने उनको भ्रमित किया और घने जंगल की ओर ले गया। उस घने जंगल में कपटी मुनि से राजा का मिलन संभव हुआ, जिसकी बातों में आकर राजा, कपटी मुनि के वशीभूत हो गए।

इसके बाद कपटी मुनि से राजा ने यह वर माँगा कि 'मेरा शरीर वृद्धावस्था, मृत्यु और दु:ख से रहित हो जाए, मुझे युद्ध में कोई जीत न सके और पृथ्वी पर मेरा सौ कलप तक एकछत्र अकंटक राज्य हो।' तब कपटी मुनि ने राजा को आश्वासन दिया।

अब घटनाक्रम का तीसरा चरण शुरू होता है, जिसमें कपटी मुनि अपनी योजनाएँ बनाता है। जिसमें वह राजा प्रतापभानु से ब्राह्मणों को परिवार सहित निमंत्रण देने के लिए कहता है और उनके भोजन को अपरिचित वेश में वह कपटी मुनि स्वयं बनाता है, और उस भोजन में पशुओं व ब्राह्मणों का मांस मिला देता है।

जैसे ही ब्राह्मण उसे खाने के लिए प्रस्तुत होते हैं, त्यों ही कालकेतु निशाचर खुद ही अदृश्य हो करके वहाँ गूँजने वाली वाणी कहता है कि हे ब्राह्मणो! उठ-उठकर अपने घर जाओ, यह अन्न मत खाओ। इसके खाने में बड़ी हानि है। रसोई में ब्राह्मणों का मांस भी बना है।

आकाशवाणी का विश्वास मानकर सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए और क्रोध में बोल उठे—अरे मूर्ख राजा! तू परिवारसहित नष्ट होगा और परिवारसहित राक्षस बनेगा।

शाप सुनकर राजा भय के मारे अत्यंत व्याकुल हो गया। तब असली वाली आकाशवाणी हुई—"हे ब्राह्मणो! तुमने विचारकर शाप नहीं दिया। राजा ने कुछ बड़ा अपराध नहीं किया है। राजा तो भ्रमित हो गया था।" आकाशवाणी सुनकर सब ब्राह्मण चकित हो गए।

तब राजा वहाँ गया, जहाँ भोजन बना था, लेकिन गोस्वामी जी कहते हैं कि वहाँ कुछ नहीं था। तब राजा प्रतापभानु ने ब्राह्मणों को सब वृत्तांत सुनाया। तब ब्राह्मणों ने कहा—"दोष तो तुम्हारा उतना नहीं है, तो भी होनहार नहीं मिटता। ब्राह्मणों का शाप बड़ा भयानक होता है, यह किसी तरह भी टाले टल नहीं सकता।"

ऐसा कहकर सब लोग चले गए। इसके बाद अवसर पाकर अन्य राजाओं ने राजा प्रतापभानु के राज्य पर आक्रमण किया और उस युद्ध में उनका सब कुछ नष्ट हो गया। वही राजा प्रतापभानु अपने अगले जन्म में रावण के रूप में पैदा हुए और उनके परिजन भी राक्षस योनि में उनके साथ पैदा हुए।

(8) अष्टम दिवस—देवशक्तियों की प्रार्थना। जब धरती पर सारी मर्यादाएँ टूट रही हों, सारी मर्यादाएँ ध्वस्त हो रही हों, कहीं कुछ न सूझ रहा हो, मानवीय प्रयास विफल हो रहे हों, तब केवल एक ही प्रयास होता है और वो प्रयास होता है—ईश्वरीय प्रयास।

जब सबने यह देखा कि धरती पर रावणरूपी एक समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है; क्योंकि रावण कोई व्यक्ति नहीं था, जिसने केवल सीताहरण जैसा दुष्कृत्य किया, बल्कि रावण एक विचार था, एक संस्कृति थी, रावण एक वैश्विक प्रभाव था, जो जीवन को कुमार्ग पर लिए जा रहा था।

उसने जीवन की ऋषि-प्रणाली को ही ध्वस्त कर दिया था। उसके कारण लोग सोचने लगे थे कि

अब क्या होगा ? क्योंकि अब ऋषितंत्र का तो कोई प्रभाव ही नहीं है। तब धरती माता व्याकुल होकर गौ का रूप धारण करके वहाँ गईं, जहाँ देवता और मुनि थे और उन्होंने रो-रोकर सबसे अपना दु:ख कह सुनाया, पर किसी से उनका काम न बना।

तब इस समस्या का समाधान पाने के लिए सभी भगवान को खोजने लगे। भगवान शिव कहते हैं कि 'उस सभा में मैं भी था और मैंने कहा कि मैं तो बस इतना जानता हूँ कि भगवान सब जगह समान रूप से व्यापक हैं, केवल प्रेम से वो प्रकट हो जाते हैं और मेरी बात देवमंडल को प्रिय लगी।' तब ब्रह्मा जी हाथ जोड़कर देवों के साथ परमेश्वर की स्तुति करने लगे—

जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रनतपाल भगवंता......।

धरती पर जब-जब ऐसी विपत्तियाँ आती हैं, जीवनमूल्यों का संकट आता है, महाविष उफनता है, तब कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी रूप में हमें ईश्वरीय सहायता की जरूरत पड़ती है।

(9) नवम दिवस—भगवान श्रीराम का प्राकट्य। भगवान के जब अवतार प्रकट होते हैं, तो वैश्विक क्रांति का सूत्रपात होता है और सूत्रपात होने के पहले एक पृष्ठभूमि बनती है। धरती पर रावण के रक्षकुल संस्कृति के प्रचार के आचरण ने एक उत्पात मचाया, यह संस्कृति नहीं थी, यह विकृति थी।

आर्यसंस्कृति के सूत्रों को उसने जिस तरह से विकृत करके प्रस्तुत किया था, उस विकृति के विष ने एक व्यापक उथल-पुथल मचा दी थी। लोग हैरत में थे, परेशानी में थे, किंकर्त्तव्यविमूढ़ थे। मर्यादाएँ ध्वस्त हो रही थीं, ऐसी स्थिति में एक मर्यादापुरुषोत्तम के अवतार के प्रकट होने का क्षण आया।

देवों ने प्रार्थना की कि प्रभु कर्मफल की व्यवस्था ध्वस्त हो रही है, सारे-के-सारे जो असंतुलन हो रहे हैं, उसमें मानव जीवन की जो विकृतियाँ हैं, अब वो प्रकृति को विकृत करने लगी हैं। अब जीवन संकट में पड़ने लगा है। अब क्या होगा ?

देवों की इस प्रार्थना पर भगवान ने कहा—हे मुनि! हे सिद्ध! और देवताओ! डरो मत, तुम्हारे लिए मैं मनुष्य रूप धारण करूँगा और सूर्यवंश में अंशों के सहित मनुष्य का अवतार लूँगा।

भगवान ने कहा कि

कस्यप अदिति महातप कीन्हा।
तिन्ह कहुँ मैं पूरब बर दीन्हा॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा।
कोसलपुरीं प्रगट नर भूपा॥
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ जाई।
रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई॥
नारद बचन सत्य सब करिहउँ।
परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥

—बा०कां० 186/3

समय आने पर जब भगवान ने जन्म लिया, तो उसके बारे में गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं— योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि सभी अनुकूल हो गए, जड़ और चेतन हर्ष से भर गए और चूँकि राम का जन्म ही सुख का मूल है, इसलिए प्रकृति स्वयं ही हर्षित-पुलकित हो गई। रामजन्म की तिथि क्या थी ?

इस बारे में गोस्वामी जी कहते हैं—पवित्र चैत्र का महीना था, चैत्र महीने को मधुमास भी कहते हैं, नौवीं तिथि थी, शुक्ल पक्ष था और भगवान का प्रिय अभिजित मुहूर्त था और दोपहर का समय था, न बहुत सरदी थी और न गरमी थी, वह पवित्र समय सब लोकों को शांति देने वाला था।

शीतल मंद और सुगंधित पवन बह रही थी, देवता हर्षित थे, संतों के मन में बड़ा चाव था। वन

फूले हुए थे। पर्वतों के समूह मणियों से जगमगा रहे थे और सारी नदियाँ अमृतधारा बहा रही थीं। भगवान श्रीराम के आने के साथ ही एक नई विचारधारा, एक नई भारतीय संस्कृति का आरंभ हुआ और जीवन कैसा होता है ? भगवान ने अपने अवतार कार्य में यह दिखाया। राम-रावण संग्राम के बारे में गोस्वामी जी कहते हैं—

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा।
देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥

—लं०कां० 79/1

जब रावण रथी था और उसके पास महान-अपार वैभव, अपार साधन-सुविधाएँ, अपार आयुध-अस्त्र-विद्याएँ थीं और भगवान राम के पास केवल था—धर्म और भगवान श्रीराम कहते हैं—**सखा धर्ममय अस रथ जाकें,** अर्थात जिसके पास धर्म का कवच है, उसको हिला-डुला पाना मुश्किल है।

उस धर्म के कवच से सुसज्जित हो करके, उस तप की ऊर्जा से विभूषित हो करके राम आगे बढ़े, तप ही उनका शृंगार था। राजकुमार राम ने या अयोध्या के सम्राट ने लंका नहीं जीती थी, बल्कि तपस्वी, वनवासी राम ने लंका पर विजय प्राप्त की थी।

भगवान राम के साथ खड़ा था जनसमुदाय, राम केवल अयोध्या के सम्राट नहीं थे, बल्कि राम थे जननेता। राम थे विश्वसृजेता। राम विश्वशिल्पी थे, राम ने विश्व को गढ़ा, उसको नया रूप दिया। नए विधान रचे।

ऐसे विधान, जहाँ मानव और प्रकृति साथ-साथ जी सकें, **मागे बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज**। भगवान श्रीराम ने मानव और प्रकृति का ऐसा साहचर्य स्थापित किया, ऐसी मर्यादाओं का पुल बाँधा कि सब एकजुट और एकरस होते चले गए।

भगवान की लीलाएँ अद्‌भुत हैं, उनकी कथाएँ अद्‌भुत हैं। उनके जीवन के घटनाक्रम ऐसे हैं कि जहाँ उनकी लीला होती है, जहाँ उनका रूप प्रकट होता है, वहाँ पवित्रता, पावनता, सरलता, सजलता, निश्छलता, भक्ति सब कुछ तरंगित होने लगती है और जो उनके सान्निध्य में आते हैं, जो उनके साथ में रहते हैं, उनके जन्म-जन्मांतर के मल धुल जाते हैं, विक्षेप समाप्त हो जाते हैं, अवरोध समाप्त हो जाते हैं। भगवान अपने भक्तों को अपना सब कुछ दे डालते हैं। इस तरह भगवान की यह अवतार कथा मनोहर व कल्याणकारी है। ❑

****

जंगल में खरगोशों की सभा बुलाई गई। सभा का उद्देश्य अपनी-अपनी पीड़ा व्यक्त करना था। भोजन के अभाव से लेकर शिकारी जानवरों द्वारा पीछा करना तक आदि बहुत से विषयों पर चर्चा हुई। अंत में निष्कर्ष निकला कि उनकी व्यथा का मूल कारण विधाता ही हैं, जिन्होंने उन्हें इतना छोटा, दुर्बल, असहाय बना दिया है कि वे निरीह माने जाते हैं। सबने निर्णय किया कि ऐसी परिस्थितियों में सामूहिक आत्महत्या के अतिरिक्त और कोई विकल्प शेष नहीं बचता।

इसी संकल्प के साथ सबके सब तालाब को चले कि वहाँ जाकर डूब मरेंगे। तालाब के किनारे मेंढ़क बैठे थे, वो खरगोशों को देखकर डरकर भागे। यह देखकर एक समझदार खरगोश बोला—"मित्रो! अब हमें आत्महत्या करने की आवश्यकता नहीं। इस संसार में हमसे दुर्बल अनेकों जीव हैं। हमें विधाता ने जो दिया है, उसी पर संतोष करना चाहिए।" विषम परिस्थितियों में भगवान को कोसने के बजाय उन विशेषताओं पर गर्व करना चाहिए, जिनसे सुसज्जित कर भगवान ने हमें मनुष्य रूप में धरती पर भेजा है।

घर-घर यज्ञ, घर-घर संस्कार का मूल आधार



भारतीय संस्कृति इस दृष्टि से अभूतपूर्व है कि इसने एक से बढ़कर एक चिंतन को, यज्ञ से लेकर वेदांतिक दर्शन को, कर्मकांड से लेकर अध्यात्म विद्या को, योग से लेकर मनोविज्ञान को, न जाने ऐसी कितनी विधाओं को जन्म दिया, जिनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान के विस्तार को हम मात्र भारत में ही नहीं अपितु सुदूर विश्व के कोने-कोने में अनुभव कर सकते हैं। यज्ञ के ज्ञान और विज्ञान को भी भारत की भूमि से निस्सृत एक ऐसे ही कल्याणकारी ज्ञान-प्रवाह के रूप में हम देख सकते हैं।

यह कहने में किसी को जरा-सा भी संकोच नहीं होना चाहिए कि जिन ऋषियों ने यज्ञ का विज्ञान हमारी संस्कृति को दिया—उनके चिंतन, दृष्टिकोण में एक विकसित विद्या की अभिकल्पना थी, पर हम इसे हमारा दुर्भाग्य कह लें कि हम उस दर्शन को, चिंतन को, समग्रता के साथ सहेजकर नहीं रख पाए।

जैसा अनेक अन्य आध्यात्मिक परंपराओं के साथ घटा, उसी क्रम में हम यज्ञ के भौतिक पक्ष को तो सहेज पाए, पर उसके पीछे के दर्शन को भुला बैठे और इसीलिए आज यज्ञ के विस्तृत दर्शन को समझना भी अनिवार्य हो जाता है।

शब्द की दृष्टि से देखें तो यज्ञ शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'यजन्' शब्द से हुई है—जिसके तीन अर्थ निकलते हैं। पहला अर्थ तो संगतिकरण है, जिसका तात्पर्य साथ-साथ मिलकर एक अच्छे व पवित्र उद्देश्य के लिए एक ऐसे सामूहिक कार्य को करने से है, जो सारी सृष्टि में शुभ व मंगल संस्कारों को पहुँचाने का माध्यम बनता है। मंत्रजप, योग इत्यादि क्रियाएँ तो एकाकी एवं व्यक्तिगत रूप में की जा सकती हैं, परंतु यज्ञ को करने के लिए, यज्ञ का अंग बनने के लिए सामूहिकता, संगतिकरण अनिवार्य आवश्यकता के रूप में माने जाते रहे हैं।

यजन् शब्द का दूसरा अर्थ देवपूजन से है। देवपूजन का अभिप्राय मात्र चिह्नपूजा करना नहीं है, बल्कि अपने व्यक्तित्व में दैवी और ईश्वरीय गुणों को धारण करना भी है। देव शब्द का अर्थ उन शक्तियों, उन व्यक्तित्वों से निकलता है जो देने की ताकत रखते हों।

ऐसा कहा जा सकता है कि जो दे सके—वो है देवता, जो देने का अधिकार रखे—वो है देवता और जिसका हृदय उदार हो—वो है देवता। ऐसी शक्तियों का पूजन, ऐसी शक्तियों का संगतिकरण, ऐसी शक्तियों के साथ बैठना, ऐसी शक्तियों के समीप बैठकर उनके गुणों को धारण करने का अभिप्राय देवपूजन से निकलता है।

यज्ञ का गुह्य अर्थ देखें तो ऐसा कहा जा सकता है कि यज्ञ का अर्थ अपने जीवन में, अपने व्यक्तित्व में, अपनी सोच में, अपने चिंतन में, अपनी भावनाओं में दैवी गुणों को आत्मसात् करने से है। दैवी गुणों का अर्थ भी देने की भावना, त्याग की भावना, उदारता की भावना, करुणा की भावना, बलिदान की भावना, दया की भावना एवं दान की भावना से है। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि भगवान के पास बैठकर भगवान के गुणों को धारण करने का नाम यज्ञ है।

पूज्य गुरुदेव ने प्रज्ञा पुराण में एक कथा का उल्लेख किया है, जिसमें विधाता देवर्षि नारद को यह स्पष्ट करते हैं कि देव एवं असुर, दोनों उन्हीं की संतान होते हुए भी अलग-अलग भाव से क्यों देखे जाते हैं। कथा में उल्लेख आता है कि भगवान ने देव एवं असुर दोनों को भोजन पर बुलाया, पर भोजन परोसने से पहले एक ही शर्त रखी कि भोजन सबको मिलेगा, पर कुहनी को मोड़े बगैर ही भोजन करना है।

स्वार्थी प्रवृत्ति के होने के कारण असुर बहुत प्रयत्न करने पर भी भोजन नहीं कर सके; जबकि देवताओं ने विधाता के कहे का अर्थ समझा और अपने से निकट बैठे व्यक्ति को बिना कोहनी मोड़े भोजन कराकर स्वयं तृप्तता को अनुभव किया। सभी का पेट भरा और यह संदेश भी मुखर हुआ कि देवत्व का अभिप्राय, स्वयं को मिले को बाँटने से है। इन्हीं गुणों की अभिवृद्धि देवपूजन के वास्तविक उद्देश्य के रूप में गिनी जा सकती है।

सही पूछें तो यज्ञ की जो प्रक्रिया है, उसका उद्देश्य ही मनुष्य के जीवन एवं जीवनशैली में सांगोपांग परिवर्तन करना है। यह प्रक्रिया ही मनुष्य को देवता बना देने की प्रक्रिया है और मनुष्य में देवत्व को उभार देने की प्रक्रिया है और धरती पर स्वर्ग को उतार लाने की प्रक्रिया है।

इसी तरह से यज्ञ का उद्देश्य सकारात्मकता के तीव्र प्रवाह को जन्म देना भी है। यज्ञाग्नि हमें यह संदेश देती है कि हम अपने जीवन में ऊर्जा व ऊष्मा को उत्पन्न करें, अपने विचारों में तेजस्विता को लाएँ, अपने भीतर उमंग व उत्साह लाएँ। ऐसा उत्साह लाएँ कि जो भी हमारे पास आए वो भी उत्साह से सराबोर हो बैठे—उसके जीवन में भी उमंग का, उल्लास का प्रवाह आ जाए।

एक तरह से इसे ही युवा होने की परिभाषा भी मान सकते हैं। युवा होने का अर्थ विचारों की तेजस्विता से है, जीवन में प्रवाह, जीवन में उमंग व उल्लास के संचार से है। पानी एक जगह ठहर जाए तो बदबूदार नाला बन जाता है और वही पानी बहने लगे तो नदी बन जाता है।

इसी तरह से जिसके जीवन में उमंग है, उल्लास है उसी का नाम युवा है और इसी उमंग व उल्लास का प्रतीक अग्नि है। आग जलती है तो कितनी भी ठंढक हो, वो दूर हो ही जाती है। इसी गरमी, इसी उत्साह का प्रतीक यज्ञ है।

इसी क्रम में यज्ञाग्नि हमें प्रकाश भी देती है। कितना भी घना अंधकार छाया हो, अग्नि प्रज्वलित होते ही वहाँ प्रकाश आ जाता है। इस तरह से अंधकार से प्रकाश में जाने का प्रतीक अग्नि है, असत् से सत् में जाने का प्रतीक अग्नि है और अज्ञान से ज्ञान में जाने का प्रतीक भी अग्नि है। जब मनुष्य के जीवन में दैवी गुण आते हैं तो उसके चारों ओर भी ऐसे ही प्रकाश का विस्तार होता चला जाता है।

इसीलिए यज्ञ में अग्नि प्रज्वलित करते हैं; क्योंकि उसका जलना इस बात का प्रतीक है कि हम भगवान से, उस शक्ति से जो सृष्टि की संचालक है—यह प्रार्थना कि आप हमें सद्ज्ञानरूपी प्रकाश के मार्ग पर ले चलें।

यहाँ याद रखने की बात है कि एक यज्ञ तो हम व्यक्तिगत रूप से करते हैं, पर एक यज्ञ प्रकृति भी करती है। एक आग हम कुंड में जलाते हैं तो दूसरी अग्नि प्रकृति ने विशालकाय सूर्य के रूप में वहाँ आसमान में जला रखी है। जिस तरह हम हवन सामग्री यज्ञ कुंड की यज्ञाग्नि में अर्पित करते हैं तो वैसे ही प्रकृति भी हवा, पानी, बादलों के रूप में अपना सर्वस्व परमात्मा को आहुति रूप में अर्पित करती है।

यज्ञ का तीसरा अर्थ दान से, निरहंकारिता से आता है, जब हम यज्ञ में आहुति देते हैं तो मंत्रोच्चार

के बाद स्वाहा कहने के साथ ही हम कहते हैं—'इदं न मम'।

यह कहने का अर्थ है कि यह हमारा है नहीं और हो भी नहीं सकता। यह संसार परमेश्वर का है, अग्नि परमेश्वर की, परमेश्वर की समिधाएँ—सभी परमेश्वर के हैं। इस निरहंकारिता पूर्ण दान का अर्थ यज्ञ से निकलता है।

जब हम 'घर-घर यज्ञ, घर-घर संस्कार—गृहे-गृहे यज्ञ, गृहे-गृहे गायत्री' के उद्‌देश्य को पूर्ण करने के लिए निकले हैं तो इस सत्य का स्मरण अनिवार्य हो जाता है।

यज्ञ का एक भौतिक पक्ष है, जो अग्नि उज्ज्वल, आहुति अर्पण से होता है तो यज्ञ का दूसरा पक्ष व्यक्तित्व का रूपांतरण और सद्‌भावनाओं की आहुति माँगता है। इस भावना के साथ किया गया यज्ञ सारी समष्टि को फल प्रदान करता है। यही घर-घर यज्ञ पहुँचाने का आधार है। ❑

एक गाँव के बाहर एक बाबाजी की कुटिया थी। बाबाजी अपनी भद्रता और मिलनसारिता के कारण गाँववासियों में अत्यंत लोकप्रिय थे। उस गाँव में एक दूसरे गाँव से एक भीलनी रोज दूध बेचने के लिए आती थी। सबसे पहले वह बाबाजी को दूध देती, फिर गाँव के अन्य लोगों के पास जाती। एक दिन वह देरी से आई तो बाबाजी ने कारण पूछा। भीलनी बोली—"आज नदी पार करने के लिए नाव देर से मिली। इसीलिए देर से आई।" बाबाजी बोले—"बेटी! लोग तो भगवान के नाम से भवसागर को पार कर जाते हैं, तू एक नदी नहीं पार कर सकती?"

भीलनी पर बाबाजी की बात का गहरा प्रभाव पड़ा। अगले दिन वह प्रातःकाल ही बाबाजी के द्वार पहुँच गई। बाबाजी ने पूछा—"आज इतनी जल्दी कैसे आ गई?" भीलनी बोली—"आपने ही तो भगवन्नाम का सहारा सुझाया था। आज उन्हीं का नाम लेकर पानी पर चलती हुई यहाँ आ गई। अब नाव का सहारा लेने की जरूरत जीवन भर नहीं पड़ेगी।" बाबाजी ने भगवन्नाम का उपदेश दिया तो था, परंतु उन्हें स्वयं उसके इतने बड़े प्रभाव का भान न था। उन्हें लगा कि भीलनी उनसे यह बात हास्य में कह रही है सो वे प्रमाण लेने भीलनी को लेकर नदी किनारे पहुँचे। यह देखकर उनकी आँखें आश्चर्य से खुली रह गईं, जब भीलनी सिर्फ भगवान का नाम लेते हुए सहजता से नदी पर चलते हुए दूसरी ओर को जाने लगी। बाबाजी भीलनी को प्रणाम करते हुए बोले—"बेटी! आज से तू ही मेरी गुरु है। मैंने तो जीवन भर भगवान का नाम लेने का उपदेश भर दिया है, पर तूने तो भगवान को अपना करके दिखा दिया।" निष्पाप हृदय वाले सच्चे मन से भगवान को पुकारते हैं तो वे भी उनके सहारे के लिए उपस्थित हो जाते हैं।

योगक्षेम आपका ही

एकनिष्ठ ओंकार पूज्यवर, आप सृष्टि में रहते हैं।
छोड़ दिया सब भार आपके, योगक्षेम में पलते हैं॥

मानव जीवन मिला आज,
फिर हमने मन में ठाना है।
काम क्रोध मद अहंकार से,
मुक्ति हमें अब पाना है।
जो अनीतियों से लड़ने की, राह बताई चलते हैं।
छोड़ दिया सब भार आपके, योगक्षेम में पलते हैं॥

क्षमा दया करुणा ममता का,
सागर जहाँ मचलता है।
शील सादगी सज्जनता का,
भाव सदैव उमड़ता है।
मानवता के सद्गुण सारे, सद्विचार में पकते हैं।
छोड़ दिया सब भार आपके, योगक्षेम में पलते हैं॥

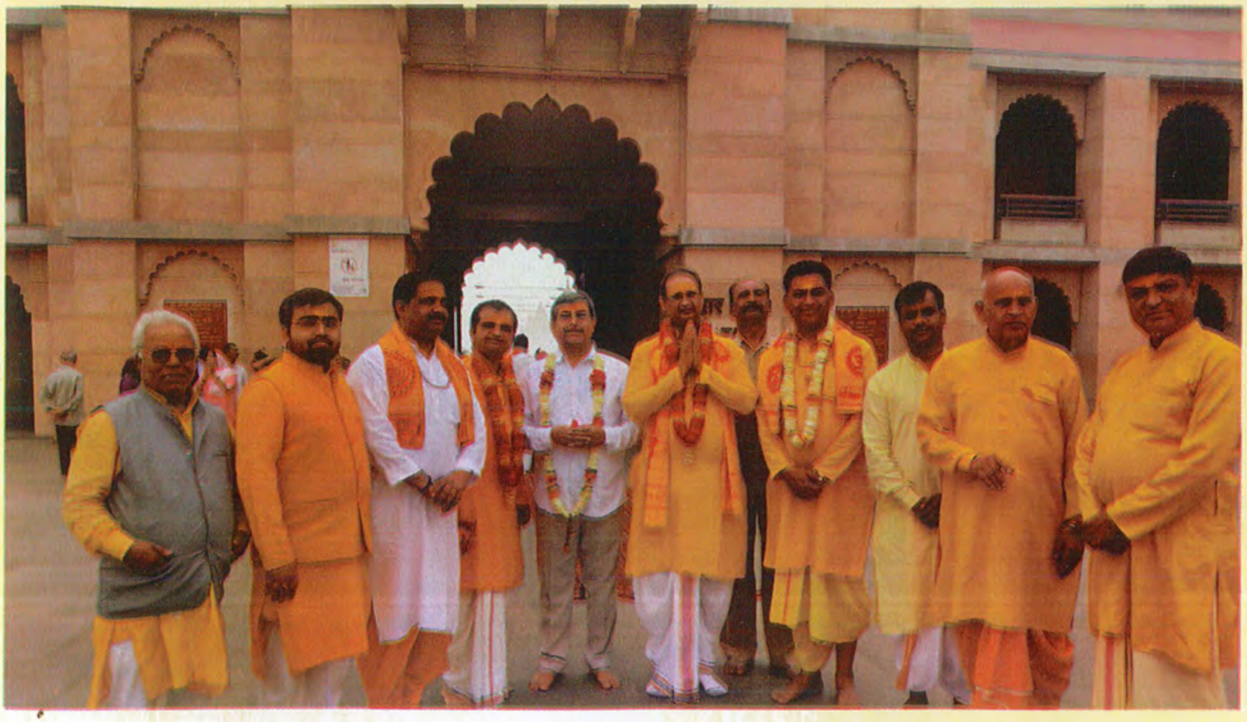
पीड़ाएँ जग की पीने को,
हृदय सदा अकुलाता है।
दुखिया की राहों में ही,
बिछ जाऊँ मन हरषाता है।
सत्कर्मों के दीप हमारे, मन-मंदिर में जलते हैं।
छोड़ दिया सब भार आपके, योगक्षेम में पलते हैं॥

जिस भी रूप नमन करता,
जो विश्व रूप भगवान का।
सद्गुरु आप प्रमाण रूप,
हरते हर दुःख इनसान का।
इष्टदेव हैं आप हमारे, श्रद्धा-पूरित हो कहते हैं।
छोड़ दिया सब भार आपके, योगक्षेम में पलते हैं॥

—शोभाराम शशांक



राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा 'कुटुंब प्रबंधन; व्यक्तित्व विकसन का प्रभावी केंद्र' विषय पर नई दिल्ली में आयोजित कार्यशाला में प्रतिकुलपति की भागीदारी



प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय का काशी विश्वनाथ धाम प्रवास तथा गायत्री परिजनों से भेंट–परामर्श एवं भावी योजनाओं पर विचार विनिमय

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-05-2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023



गायत्री शक्तिपीठ (रामसनेही घाट-बाराबंकी) के प्राण-प्रतिष्ठा समारोह एवं
24 कुंडीय नवचेतना जागरण गायत्री महायज्ञ में प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय की गरिमामयी उपस्थिति

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक--डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल—akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org